अंक : १३६

अक्तूबर-दिसंबर २०१६

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

कमल कपूर • राजेंद्र वर्मा • डॉ. मोहसिन ख़ान

कल्पना रामानी • जयराम सिंह गौर

आमने-सामने
जयराम सिंह गौर

सागर-सीपी
मनहर चौहान

२० रुपये

आर सी एफ

साथ बढ़ें समृद्धी की ओर

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

पृथ्वी का अधिक पोषण
भारत की अधिक समृद्धि

छटें दशक में अपनी शुरुवात से ही आरसीएफ भारत की कृषि उत्पादकता को बढानेवाली एक प्रमुख शक्ति रही है। हमारी कामयाबी की जड़ें हमारे विश्वास में हैं, हमारा विश्वास है कि कृषक समुदाय की अधिकारिता ही सम्मलित विकास की ओर अग्रेसर करती है। लम्बे समय से हम भारतीय किसानों के सच्चे और विश्वसनीय हमसफर रहे हैं। निरंतर कृषि के माध्यम से निरंतर आत्मनिर्भरता आज राष्ट्र की जरुरत है और हम गुणवत्तापूर्ण कृषि इनपुट और प्रभावी कृषि सेवा किसानों को प्रदान करके मिट्टी की उचित देखरेख के साथ खेतों की उच्च उत्पादकता सुनिश्चित कर रहे हैं।

हमारे प्रेरणादायी निष्पादन :

- देश के अग्रणीय उर्वरक निर्माता।
- पिछले पाँच दशकों से भारतीय किसानों को समर्पित सेवाएँ।
- उर्वरक क्षेत्र में पहली पाँच कंपनीयों में स्थान।
- 'उज्ज्वला' यूरिया, संयुक्त श्रेणी 'सुफला' (15:15:15 और 20:20:0) पानी में घुलनशील उर्वरक 'सुजला', जैविक उर्वरक 'बायोला' सूक्ष्म पोषक तत्वोंवाला 'माइक्रोला' जैसे कई उत्पाद।
- रासायनिक क्षेत्र में अग्रणी, 20 औद्योगिक रसायनों का उत्पादन।

भविष्य की राह :

- 1.27 मिलियन टन प्रति वर्ष यूरिया बनाने के लिए विस्तारित परियोजना।
- सीआइएल, गेल और एफसीआइएल के साथ मिलकर कोल गैसिफिकेशन के माध्यम से तालचर में उर्वरक संकुल स्थापित करना।
- मध्य पूर्वी संसाधन समृद्ध देशों में यूरिया के लिए संयुक्त उद्यम नरियोजनाएँ स्थापित करना।
- रॉक फास्फेट और पोटाश के लिए लम्बी अवधि का ऑफटेक करार करना।
- निरंतर विकास पर सशक्त रुप से ध्यान केंद्रित करना।

राष्ट्रीय केमिकल्स एण्ड फर्टिलाइजर्स लिमिटेड
(भारत सरकार का उपक्रम)

"प्रियदर्शिनी", इस्टर्न एक्सप्रेस हाईवे, सायन, मुंबई - **400 022.** | www.rcfltd.com

अक्तूबर-दिसंबर २०१६
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना "अरविंद"
संपादिका
मंजुश्री
संपादन सहयोग
डॉ. राजम पिल्लै
जय प्रकाश त्रिपाठी
अशोक वशिष्ठ
अश्विनी कुमार मिश्र

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

●सदस्यता शुल्क●
आजीवन : ७५० रु., **त्रैवार्षिक** : २०० रु., **वार्षिक** : ७५ रु.,
कृपया सदस्यता शुल्क मनीऑर्डर, चैक द्वारा केवल **"कथाबिंब"** के नाम ही भेजें.

●रचनाएं व शुल्क भेजने का पता●
ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई-४०० ०८८.
फोन : २५५१ ५५४१, ९८१९१६२६४८

e-mail : kathabimb@gmail.com
www.kathabimb.com

● **न्यूयॉर्क संपर्क** ●
नरेश मित्तल
(M) 845-304-2414
नमित सक्सेना
(M) 347-514-4222
● **शिकागो संपर्क** ●
तूलिका सक्सेना
(M) 224-875-0738

एक प्रति का मूल्य : २० रु.
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु २० रु. के डाक टिकट अवश्य भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

कहानियां

।। ७ ।। वृंदा ने कहा था... – कमल कपूर
।।११।। विकल्प – राजेंद्र वर्मा
।।१५।। क़बरखुद्दा – डॉ. मोहसिन ख़ान
।।२७।। कसाईखाना – कल्पना रामानी
।।३१।। नदी, सीप और घोंघे – जयराम सिंह गौर

लघुकथाएं

।।१४।। राजनीति के होनहार / ज्ञानदेव मुकेश
।।१९।। बुलावा / ओम प्रकाश बजाज
।।२५।। खाटें / सुरेश सौरभ
।।३६।। सहिष्णुता बनाम असहिष्णुता, प्यास / डॉ. कुंवर प्रेमिल
।।४०।। ज़मा खाता / डॉ. वी. गोविंद शेनॉय
।।५३।। आर्तनाद / सुरेश सौरभ

कविताएं / ग़ज़लें

।।२१।। कविता / नरेश कुमार "उदास"
।।२३।। कविताएं / निरुपम
।।२६।। स्मृति बिंबों में बचपन / राधेलाल बिजघावने
।।३०।। कविता / डॉ. रणजीत
।।३०।। ग़ज़ल / चंद्रसेन "विराट"
।।४८।। ग़ज़ल / राजेंद्र तिवारी
।।४८।। ग़ज़ल / सच्चिदानंद "इंसान"

स्तंभ

।। २ ।। "कुछ कही, कुछ अनकही"
।। ४ ।। लेटर बॉक्स
।।३७।। "आमने-सामने" / जयराम सिंह गौर
।।४१।। "सागर-सीपी" / मनहर चौहान
।।४५।। "औरतनामा" / डॉ. राजम पिल्लै
।।४९।। पुस्तक-समीक्षा

● **"कथाबिंब" अब फेसबुक पर भी** ●
facebook.com/kathabimb
आवरण पर नामित रचनाकारों से निवेदन है कि वे कृपया अपने नाम को "टैग" करें.

आवरण चित्र : बैक वाटर्स, एलेप्पी, केरल.
चित्र : डॉ. अरविंद

"कथाबिंब" मुंबई की "संस्कृति संरक्षण संस्था" के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

"कथाबिंब" का यह १३६वां अंक नये साल के आरंभ में पाठकों के पास पहुंचेगा. पिछले अनेक वर्षों से लेखकों, पाठकों एवं विज्ञापन दाताओं का हमें निरंतर सहयोग मिलता रहा है. हम सभी के हृदय से आभारी हैं. सभी को नववर्ष की शुभकामनाएं. अभी कुछ दिन पहले, नवंबर मध्य में केरल घूमने का अवसर प्राप्त हुआ. सब तरफ़ प्राकृतिक छटा देखते ही बनती थी. अंक के मुखपृष्ठ पर एलेप्पी के बैकवाटर्स का मनोहर दृश्य प्रस्तुत है. केरल की कुछ अन्य झलकियों के लिए तीसरा आवरण देखें.

इस वर्ष से *"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार"* की राशि में थोड़ी अभिवृद्धि की गयी है. सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार १५०० रु., दो श्रेष्ठ पुरस्कार १००० रु. (प्रत्येक) तथा पांच उत्तम पुरस्कार ७५० रु. के होंगे. वर्ष २०१६ के चारों अंकों में, कुल मिलाकर २० कहानियां प्रकाशित हुई हैं. अभिमत भेजने हेतु "मत-पत्र" पृष्ठ ५६ पर छपा है. पाठकों से निवेदन है कि मत-पत्र के माध्यम से, पोस्ट कार्ड अथवा मेल द्वारा, अपने अभिमत का क्रम हमें भेजें. पाठकों से अनुरोध है कि कृपया अधिक से अधिक संख्या में इस आयोजन में भाग लें. "कथाबिंब" ही एक मात्र पत्रिका है जो पाठकों के सहयोग से लोकतांत्रिक तरीक़े से लेखकों को पुरस्कृत करती है. वर्ष के सभी अंक आप "कथाबिंब" की वेबसाइट पर भी पढ़ सकते हैं. वेबसाइट के अलावा "कथाबिंब" को फ़ेसबुक पर भी देखा जा सकता है.

यह विदित ही है कि "कथाबिंब" मुंबई की *"संस्कृति संरक्षण संस्था"* के सौजन्य से प्रकाशित होती है. पूरे वर्ष में संस्था जनसामान्य से जुड़े अनेक कार्यक्रम आयोजित करती है. १९ फरवरी २०१७ को *"विज्ञान तथा तकनीकी के परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता"* विषय पर एक अर्ध-दिवसीय परिगोष्ठी का आयोजन चेंबूर (मुंबई) स्थित विवेकानंद कला, विज्ञान व वाणिज्य महाविद्यालय के सभागृह में किया जा रहा है. परिगोष्ठी में भाग लेने के लिए कोई शुल्क नहीं है, सभी आमंत्रित हैं.

●

आइए, इस अंक की कहानियों पर कुछ छुट-पुट .... समय के साथ सब कुछ बदल जाता है. मां-बाप बच्चों की परवरिश में कुछ भी कमी नहीं छोड़ते. पढ़-लिख कर वे विदेश चले जाते हैं और अक्सर वहीं बस जाते हैं. कमल कपूर की कहानी *"वृंदा ने कहा था..."* में एक ऐसा ही परिवार है. मरणासन्न वृंदा विदेश बसे अपने पुत्रों का चेहरा देखना चाहती है किंतु उसे अंत तक निराशा ही हाथ लगती है. अगली कहानी *"विकल्प"* के लेखक राजेंद्र वर्मा से "कथाबिंब" के पाठक पूर्व परिचित हैं. कहानी एक सामान्य-सी घटना से शुरू होती है. कहानी का नायक दिल्ली से आये अपने दोस्त से मिलने के लिए स्कूटर से उसके घर जाता है. रास्ते में कुछ बच्चे गली में लुका-छिपी खेल रहे होते हैं. स्कूटर गिरता है और एक बच्चा उसकी चपेट में आ जाता है. बाद में बच्चे की मृत्यु हो जाती है. नायक की ग़लती नहीं थी फिर भी वह ख़ुद को दोषी मानने लगा था. अंत में बच्चे का शिक्षक पिता एक अनोखा विकल्प प्रस्तुत करता है. अंक की तीसरी कहानी *"क़बरखुद्दा"* (डॉ. मोहसिन ख़ान) विचित्र परिस्थितियों की कहानी है. क़ब्र खोदने का काम भी किसी दूसरे काम की तरह ही है. लेखक ने कहानी में बहुत सूक्ष्मता से इस पेशे की बारीकियों का वर्णन किया है. नाहरू ने अपने पिता पुत्तन से सारे गुर सीख लिये थे और वह ज़्यादा अच्छी क़ब्र खोदने लगा था. पुत्तन के मरने पर नाहरू ने पूरे रस्मो-रिवाज़ से उसे दफ़नाया था. लेकिन नाहरू को यह नसीब नहीं हुआ. साबिर ग़लत राह पर चल निकला था. नाहरू की मौत बड़ी दर्दनाक परिस्थितियों में हुई. उसके जनाज़े को पुत्र साबिर का कांधा नहीं मिला. साबिर का कहीं पता ही नहीं था. अगली कहानी *"कसाईखाना"* (कल्पना रामानी) भी दो पीढ़ियों के संघर्ष की कथा है. विशाल एक ग़रीब परिवार से है. पढ़ाई करके मुंबई में उसकी अच्छी नौकरी लग गयी और वह फ़्लैट में रहने लग गया. एक दुर्घटना में पिता की मृत्यु हो जाती है, मां को विशाल साथ रहने के लिए गांव से शहर ले आता है. मां को दमे की बीमारी हो जाती है वह दिन-रात खांसती रहती है. पत्नी प्रतिभा सलाह देती है कि पुत्र को कहीं बीमारी न लग जाये इसलिए मां को वृद्धा-आश्रम भेज देना चाहिए. विशाल को यह कतई मंज़ूर नहीं ! *"नदी, सीप और घोंघे"* जयराम सिंह गौर की "कथाबिंब" में पहली कहानी है. साथ-साथ नदी किनारे सीप और घोंघे बीनते हुए डिक और स्टेला कब एक-दूसरे को चाहने लगे, पता ही नहीं चला. दोनों के परिवारों को भी यह संबंध मंज़ूर था. डिक डॉक्टरी की पढ़ाई करने इंग्लैंड चला गया. लौटा तो सारा कुछ बदल गया था.

●

समय का पहिया अपनी गति से घूमता रहता है. वर्ष २०१६ समाप्ति पर है और सबको नये साल का इंतज़ार है. इस वर्ष कुछ ऐसी बड़ी घटनाएं हुईं आने वाले समय में जिनके दूरगामी प्रभाव सामने आयेंगे. अमेरिका की चुनाव पद्धति भारत से काफ़ी अलग है. वहां भारत की तरह बहुत सारे राजनीतिक दलों की अपेक्षा मात्र दो ही पार्टियां हैं : डेमोक्रेटिक और रिपब्लिकन. प्रेसिडेन्ट का कार्यकाल ख़त्म होने से एक साल पहले से चुनाव प्रक्रिया शुरू हो जाती है. पार्टी द्वारा

नामजद कैन्डिडेट को अलग-अलग **"स्टेट्स" में** अपना एजेंडा बताना होता है. ये **"प्रिलिमनरीज़"** साल भर चलती हैं और एक रुझान सामने आता है. इस बार हिलैरी क्लिंटन और व्यवसायी डोनल्ट ट्रंप के बीच कांटे की टक्कर लग रही थी. यह लगभग तय लग रहा था कि जीत हिलैरी की होगी. किंतु अंतिम चरण के बाद चुनाव का अनपेक्षित परिणाम आया और जीत ट्रंप की हुई. ट्रंप की इस जीत का एक कारण भारतीय मूल के अमरीकियों की **"सपोर्ट" भी थी. डोनल्ड ट्रंप ने न्यू-जर्सी** की एक सभा में मोदी की तरह तालियों की गड़गड़ाहट के साथ नारा दिया था : ***"अबकी बार, ट्रंप सरकार."*** जनवरी २०१७ के मध्य में ट्रंप अपनी गद्दी संभालेंगे.

भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का डंका आज पूरे विश्व में बज रहा है. लेकिन भारतीय विपक्ष और तथाकथित कुछ वामपंथी बुद्धिजीवी ढ़ाई साल के बाद भी उन्हें प्रधानमंत्री मानने को तैयार नहीं हैं. यह तो सभी मानेंगे कि आज देश जिन समस्याओं से घिरा है वे ढ़ाई साल में ही पैदा नहीं हुई हैं. आज़ादी प्राप्त होकर ७० साल से कुछ अधिक समय हुआ. कुछ वर्षों को छोड़ दें तो कॉन्ग्रेस ही सत्ता में रही है. तो **"अच्छा, अच्छा गप-गप और थोथा-थोथा थू-थू" जनता अब स्वीकार नहीं करेगी. जनता ने** कॉन्ग्रेस को ग़लतियों की सज़ा दी है और हाशिए पर ला खड़ा किया है. संसद न चलने देना, हर नयी पहल में मीनमेख निकालना, विरोध के लिए विरोध करना ही क्या विपक्ष का काम है? शपथ ग्रहण करने के दिन से मोदी जी ने पड़ोसी देशों से संबंध सुधारने की कोशिश की. मगर पाकिस्तान ने कश्मीर में घुसपैठ ज़ारी रखी. पठानकोट में, उरी में और भी कई जगह भारतीय सैनिक वीरगति को प्राप्त हुए. अचानक भारतीय सेना ने सीमा के बहुत अंदर तक घुस कर **"सर्ज़िकल स्ट्राइक" किया.** भारतवासियों ने तो सराहा ही, साथ ही सारे विश्व ने इसकी तारीफ़ की, लेकिन विपक्ष का वही **हाल, "ढाक के तीन पात."** इस पर भी प्रश्नचिन्ह कि स्ट्राइक हुआ या नहीं, सरकार प्रूफ दे.

अगर भ्रष्टाचार को ख़त्म करना है, महंगाई को रोकना है, घुसपैठ, आतंकवाद-उग्रवाद, भुखमरी, नक्सलवाद को समाप्त करना है, कश्मीर में अमन क़ायम करना है, बेरोज़गारी दूर करना है, अपराधों पर अंकुश लगाना है, देश को विकास के पथ पर ले जाना है तो विपक्ष बताये कि उसके पास कौन-सी छड़ी है, क्या विकल्प है? विपक्ष का क्या दायित्व है? हम आम-चूल बदलाव के लिए युद्धस्तर पर काम करने की आवश्कता की बात करते हैं. पर क्या सब कुछ पुराने र्ढरे पर चलता रहे और लोग अपने घरों में आराम से रहते रहें, ऐसा संभव है? एक अघोषित युद्ध के कारण, देश की सीमा की रक्षा करने वाले युवा सैनिक शहीद होते रहें और आम लोगों को ज़रा भी खरोंच न आये, फिर भी रातोंरात "परिवर्तन" **आ जाये क्या ऐसा संभव है? अचानक ८नवंबर २०१६ को प्रधानमंत्री की नोटबंदी की घोषणा काफ़ी सोच-विचार के बाद एक तरह से "सर्जिकल स्ट्राइक" ही है. एक ही तीर से मोदी जी ने कई लक्ष्यों को भेदा है. बहुत शीघ्र अच्छे परिणाम दिखेंगे.**

पाठक आज से दो साल पहले, अक्तूबर-दिसंबर २०१४ के संपादकीय के कुछ अंश देखें : *"विदेशी कालाधन आने में कई तकनीकी समस्याएं बतायी जा रही हैं. यदि भविष्य में कभी यह कालाधन थोड़ा कुछ आया भी तो सीधे किसी के खाते में नहीं जाने वाला. ये सब मन को बहलाने-फुसलाने वाली बातें हैं. लेकिन विदेशी कालेधन से कहीं ज़्यादा देश में ही लोगों की तिज़ोरियों में ज़मा कालेधन को बाहर लाने के लिए तो तुरत-फुरत कारगर उपाय किये जा सकते हैं. सबसे अधिक कालाधन लोगों के रहने के लिए मकान बनाने वाले छोटे-बड़े भवन निर्माता पैदा करते हैं. यह सर्वविदित है कि मकान के ख़रीदने के लिए ६० : ४० या ५० : ५० के अनुपात में पैसे की मांग की जाती है. इससे स्टैंप ड्यूटी की चोरी तो होती ही है. साथ ही दो नंबर के पैसे का आगे ग़लत-सलत कामों में दुरुपयोग होता है. भवन निर्माण उद्योग अकूत कालाधन उत्पादित करता है, इसकी गणना नहीं की जा सकती. इसी तरह फ़िल्म उद्योग की सारी नींव ही कालेधन पर खड़ी हुई है, यह बात भी किसी से छिपी नहीं है. नामी फ़िल्म कलाकारों को करोड़ों में पैसा दिया जाता है. यह पैसा कहां से आता है और कहां जाता है किसी को नहीं मालूम. हर छोटे-बड़े धंधे वाला बिल और बिना बिल की बिक्री करता है. सेल्स टैक्स की चोरी करता है. सरकार चाहे तो एक समय सीमा देकर पांच सौ और हज़ार रुपयों के नये नोट ज़ारी करके सारा कालाधन बाहर ला सकती है. महंगाई को कम करने के लिए भी कई क़दम उठाये जा सकते हैं. सबसे पहले तो ज़माखोरी को अपराध की ऐसी धारा के अंतर्गत लाया जाये कि ज़माखोरों को जमानत ही न मिल सके. आज बाज़ारों में सामान भरा पड़ा है."*

●

चुनावों का मौसम जल्दी आने वाला है. बड़ी-बड़ी योजनाओं की घोषणाएं हर रोज़ की जा रही हैं. हर दल की दृष्टि उत्तर प्रदेश पर है. जनता ने लगभग एक महीने तक सत्ताधारी समाजवादी "परिवार" के सदस्यों की धींगामुश्ती को देखा है. अखिलेश जी और कॉन्ग्रेस के युवराज को लग रहा है कि अकेले नैया पार लगना संभव नहीं है. गठबंधन की बातें चल रही हैं. यदि कॉन्ग्रेस को मात्र ८० सीटें मिलती हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि युवराज ने पहले से ही हथियार डाल दिये हैं, कोई बताये कि इस पूरे प्रकरण में मान्यनीय बेचारी श्रीमती शीला दीक्षित जी को क्यों घसीटा गया?

अरविंद

लेटर-बॉक्स

▶▶ जुलाई-सितंबर२०१६ अंक मिला. मुख्यपृष्ठ हमेशा की तरह चित्ताकर्षक है. सुशांत सुप्रिय की 'धोबीपाट' और गोविंद उपाध्याय की 'सलीब पर लटका आदमी' कहानियों के पात्र आंखों के सामने चलते-फिरते नज़र आये. मधु अरोड़ा की कहानी में विदेशी माहौल का चित्रण है तो वीणा विज 'उदित' की 'सिलेटी बदलियां' में एक जगह 'लिहाफ़ों' के वर्णन ने अमेरिकी उन्मुक्त समाज के प्रभाव से लेखन को प्रभावित किया प्रतीत होता है, जो वितृष्णा जगाकर, मन खिन्न कर गया. लघुकथाएं सभी स्तरीय एवं विभिन्न धरातल पर आधारित हैं. अशोक वशिष्ठ का आत्मवृत्तांत संघर्षों की ऐसी गाथा है, जो उन अवसादग्रस्त लोगों को आत्मबल के लिए प्रेरित कर सकती है, जिन्हें आत्महत्या ही अंतिम उपाय लगता है. १९५०-६०-७० के दशकों में पैदा हुए लोगों की जिजीविषा आज भी क़माल की है, जबकि तब की ज़िंदगी आसान नहीं हुआ करती थी. डॉ. क्षमा शर्मा की वैचारिक स्पष्टता भाती है. 'औरतनामा' में महादेवी वर्मा पर लिखते-लिखते डॉ. राजम पिल्लै कितनी मर्मांतक पीड़ा से गुज़र रही थीं साफ़–साफ़ झलक रहा है. अशोक वशिष्ठ के 'रिश्तों के दोहे' हक़ीक़त बयान कर रहे हैं, तभी तो कोमल वाधवानी 'प्रेरणा' की 'खाली थाली' एक चिड़िया के माध्यम से परोस दी गयी है.

अरविंद जी 'कुछ कही, कुछ अनकही' में कितना कुछ तो कह डालते हैं. कभी 'अनकहा' भी अवश्य लिखें. उत्सुकता रहेगी.

– आशागंगा प्रमोद शिरढोणकर

'श्री प्रमोदस्थान', ५६९-बी, सेठीनगर, उज्जैन–४५६०१०.

मो. ९४०६८८६६११.

▶▶ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर '१६ अंक मिला. धन्यवाद.

मैं सबसे पहले संपादकीय पढ़ता हूं, वही श्रेष्ठतम मैटर है. इस संपादकीय को तो दो बार पढ़ा. कथाओं में वीणा विज की 'सिलेटी बदलियां' कहानी ही उत्तम और पठनीय है. 'धोबीपाट' सुशांत सुप्रिय की कथा और अच्छी बन सकती थी. डॉ. निरुपमा राय अच्छी लेखिका हैं, किंतु कहानी 'तुम्हारी अनुभूति' अति भावुकता का शिकार हो गयी है. चरित्र चित्रण अ–यथार्थ लगते हैं. सबसे निराश किया 'एक सुहानी शाम..' मधु अरोड़ा की कथा ने. कहां, किस शहर पहुंचे पात्र पता ही नहीं लगता. फिर जीनू, महु, शैलू, रिया आदि हैं कौन? सब बहनें हैं या और कुछ बताया नहीं है. यह तो संपादकीय से ही पता लगा कि लंदन घूमने गये हैं. शायद मुझसे चूक हुई, किंतु कथा में कहीं पता नहीं कि लंदन गये हैं. कहानी सारी अस्वाभाविक लगती है. पात्रों का पारस्परिक संबंध कहीं है ही नहीं. लंदन निवासी मेजबान जीनू इन लोगों का है कौन?

लेखिका ने यही मान कर लिखा है कि पाठक उन पात्रों को जानता होगा.

'सलीब पर लटका आदमी' अच्छी कथा है. नायक की त्रासदियों को बख़ूबी बताया गया है. लघुकथाएं उत्तम हैं. शिव डोयले के मुक्तक बहुत अच्छे बने हैं.

– चंद्रमोहन प्रधान

आमगोला, मुजफ्फरपुर-८४२००२.

▶▶ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर '१६ अंक हस्तगत हुआ. मेरा मानना है कि 'कथाबिंब' मात्र पत्रिका नहीं एक संकल्प है, अनुष्ठान है साहित्य सेवा का. संभवत: यही समर्पण हर अंक को विशिष्ट बना देता है.

हमेशा की तरह सभी कहानियां एक से बढ़कर एक. 'धोबीपाट' जिजीविषा की जीत को रेखांकित करती है. गोविंद उपाध्याय, मधु अरोड़ा व डॉ. निरुपमा राय की कहानियां बुनावट के ताने-बाने के कारण विशेष प्रभावी हैं. 'आमने-सामने' में अशोक वशिष्ठ की आत्मगाथा प्रेरक है. 'सागर-सीपी' में क्षमा शर्मा का साक्षात्कार बेबाकी के कारण अच्छा लगा. लघुकथाएं मारक हैं. कविताएं

प्रभाव छोड़ती हैं परंतु ग़ज़लों में कच्चापन झलकता है. बहरहाल... एक पठनीय अंक की प्रस्तुति हेतु पत्रिका परिवार को बधाई.

– राजेंद्र तिवारी,
'तपोवन' ३८-बी, गोविंद नगर, कानपुर.
मो. : ९३६९८१०४११.

▸▸ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितंबर '१६ का अंक मिला. आपकी क़लम के साथ-साथ आपके कैमरे का भी जवाब नहीं. आवरण पृष्ठ पर आपके कैमरे का क़माल देखने को मिला. क्या सुंदर बहुरंगी झलक हरिद्वार के पावन धाम मंदिर की आपने प्रस्तुत की है. आपकी यायावरी 'कथाबिंब' के पाठकों को ऐसी सौगात देती रहे, यह अपेक्षा है.

इस अंक की लघुकथाओं ने इस बार ख़ूब प्रभावित किया. 'खाली थाली', 'नियमों में आदत', 'चरण चिरौरी' का जवाब नहीं. कविताओं और ग़ज़लों का चयन उत्तम रहा. अशोक वशिष्ठ की खरी-खरी भी ख़ूब रही. उनके रिश्ते के दोहे भी पठनीय और मननीय है.

मधु अरोड़ा की कहानी 'एक सुहानी शाम... यूं ही बीती' आज की शिल्प प्रधान कहानियों का प्रतिनिधित्व करती है. ऐसी कहानियां कुछ न कहकर भी बहुत कुछ कह देने का दावा करती हैं. कहानी के प्रारंभ में दो पंक्तियों का शीर्ष नोट पैबंद-सा लगा. इस तरह तो हर कहानी के साथ ऐसा शीर्ष नोट देना पड़ेगा. कहानी तो कहानी होती है. यदि उसमें किसी को अपना अक्स दिखाई देने लगे, तो वह संयोग ही होता है. कल्पना कभी–कभी हक़ीक़त से टकरा जाती है. सुशांत सुप्रिय की कहानी 'धोबीपाट' में एक सर्वथा नये विषय को कहानी में कुशलता से छुआ गया है. मालवा में धोबीपाट को धोबीपछाड़ दांव के बतौर पहचाना जाता है. बारली, घिस्सा दांव भी कुश्ती में काफ़ी चलते हैं. मैंने दैनिक समाचार पत्र के रिपोर्टर के रूप में कुश्ती-दंगल ख़ूब देखें, रिपोर्ट किये हैं. वह छोटे गामा, छब्बू, भगवती, हमीदा बानू जैसे पहलवानों का ज़माना था. कहानीकार ने कहानी के माध्यम से पहलवानों से जुड़ा बड़ा मुद्दा उठाया है कि लोकतंत्र के ज़माने में पहलवानों की ख़ुराक के बारे में सरकार को कोई नीति बनाना चाहिए, क्योंकि पंजाब और हरियाणा के अपवादिक पहलवानों को छोड़कर शेष तो भारी महंगाई के इस ज़माने में पहलवानी के अनुकूल ख़ुराक की व्यवस्था नहीं कर सकते. उल्लेखनीय है कि राजा-नवाबों के समय में सरकार पहलवानों के लिए सारी व्यवस्थाएं जुटाती थी.

डॉ.निरुपमा राय की कहानी 'तुम्हारी अनुभूति' काफ़ी प्रभावित करती है. गोविंद उपाध्याय की कहानी में एक ऐसे सच को कहानी के पात्र लालवानी के माध्यम से उजागर किया गया है, जिसको अब भी लोग स्वीकार नहीं कर रहे हैं कि बेटियां भी बेटों से कम नहीं होतीं. 'आमने-सामने' में अशोक वशिष्ठ ख़ूब और अच्छा बतियाये हैं. लगता है यह रचनाकार ज़मीन पर मज़बूती के साथ खड़ा है. विदुषी डॉ. राजम पिल्लै ने प्रणम्य महादेवी वर्मा के बारे में बहुत कुछ बताने का सराहनीय उपक्रम किया है. एक अहिंदी भाषी लेखिका कवयित्री के बारे में इतनी गहराई से लिखें, बड़ी बात है. उन्हें हार्दिक बधाई.

– युगेश शर्मा
'व्यंकटेश कीर्ति', ११ सौम्या एन्क्लेव एक्सटेंशन, सियाराम कॉलोनी, चूनाभट्टी, भोपाल-४६२०१६.
मो.: ९४०७२७८९६५.

▸▸ 'कथाबिंब' का जुलाई-सितं. '१६ अंक मिला.

आद्योपांत पढ़ गया. पहली कहानी 'सिलेटी बदलियां' ने अपने ढंग से प्रभावित किया. संपादक ने उसका क्रम पहला रखा, कहानी ज़रूर इस काबिल थी. वीणा विज 'उदित' की शैली/कथ्य/कथानक ने मिलकर भीतर तक पिघला दिया. रहा कहानी का अंत तो इससे अलग कोई अंत हो ही नहीं सकता. कहानीकार जबलपुर से संबद्ध रही हैं. इसलिए और पुरज़ोर बधाई. वह संस्कारधानी में रहकर पढ़ी हैं तो ज़रूर यहां की साहित्यिक गतिविधियों से वाकिफ़ रही होंगी. 'धोबी पाट' के कहानीकार सुशांत सुप्रिय एक भ्रम पैदा करते हैं अपने पहलवान होने का.

इतनी बारीक़ी से कहानी की बुनावट कोई पहलवान कहानीकार ही कर सकता है. 'तुम्हारी अनुभूति' की कहानीकार डॉ. निरुपमा राय वैसे भी अपनी कहानियों से हमेशा पहचानी जाती रही हैं. औरत की कल्पनाशीलता, मनोभावों, उठते उद्वेगों को एक औरत ही ज़्यादा समझ सकती है.

लघुकथाएं अच्छी हैं, उनमें धार है. नये लघुकथाकार सुरेश कुशवाहा 'तन्मय' की लघुकथा प्रभावित करती है. 'नील घन में दमकती दामिनी' में महादेवी जी को एक नये सिरे से जानने-समझने का सुअवसर मिला. डॉ. राजम पिल्लै का आलेख 'औरतनामा' में सिरमौर हो गया. 'सागर/सीपी' में डॉ. क्षमा शर्मा का साक्षात्कार नयी जानकारी देता हुआ मिला.

- डा. कुंवर प्रेमिल

८- विजयनगर, जबलपुर -४८२००२ (म. प्र.).

▸▸ 'कथाबिंब' जुलाई-सितं. '१६ अंक प्राप्त हुआ. आभार. डॉ. निरुपमा राय (तुम्हारी अनुभूति) एवं वीणा विज (सिलेटी बदलियां) अच्छी लगीं. लघुकथाओं में गौरेया (डॉ. शुक्ल) टी. वी. के किसान (चित्तरंजन गोप), चरण चिरौररी (तन्मय) और दरवाज़ा बंद हो गया (डॉ. गुप्त) ने ध्यान आकर्षित किया.

काव्य–पक्ष प्रभावित करता है. 'आमने-सामने' में अशोक वशिष्ठ का जीवट भरा जीवनवृत्त, तथा 'सागर-सीपी' में डॉ. क्षमा शर्मा की बातचीत प्रभावी है. संपादकीय में आपने अंक की रचनाओं पर एक नज़र डालकर पाठकों का चयन आसान कर दिया है. इसी तरह देश विदेश की महत्वपूर्ण घटनाओं पर भी आपकी नज़र रही है. आवरण चित्र मोहक है.

– आनंद बिल्थरे

प्रेमनगर, बालाघाट- ४८१००१ (म. प्र.)
मो. : ८३५८९२१००५.

▸▸ 'कथाबिंब' से मेरा परिचय बहुत पुराना है. मैं अब सेवानिवृत हो चुका हूं. मैं और डॉ. माधव सक्सेना दोनों ही मुंबई के भाभा परमाणु केंद्र में वैज्ञानिक थे. मैं अणुशक्तिनगर में रहता था और सक्सेना जी चेंबूर में. यह उन दिनों की बात है जब भाभा परमाणु केंद्र में निजी वाहन ले जाने की पाबंदी नहीं थी. डॉ. सक्सेना हिंदी विज्ञान साहित्य परिषद से संबद्ध थे और मैं केंद्रीय सचिवालय हिंदी परिषद की शाखा से. मुझे हिंदी अच्छी तरह नहीं आती थी किंतु राष्ट्रभाषा से प्रेम के कारण कुछ योगदान की इच्छा मन में अवश्य थी. मैं घर से ऑफ़िस पैदल ही जाता था. एक दिन मैं केंद्र के गेट के पास पहुंचा ही था कि मेरे पास एक कार आकर रुकी. कार सक्सेना जी चला रहे थे. उन्होंने मुझे लिफ़्ट दी. मैंने देखा कि गाड़ी में किसी पत्रिका की प्रतियां रखी थीं. उतरते समय माधव जी ने बताया कि पिछले कुछ सालों से वे 'कथाबिंब' निकाल रहे हैं. मैंने उन्हें पैसे देने चाहे तो उन्होंने कहा कि आप पहले पत्रिका पढ़िए.

मुझे पत्रिका अच्छी लगी और मैं उसका आजीवन सदस्य बन गया. मैंने कुछ और मित्रों को भी सदस्य बनने के लिए प्रेरित किया. 'कथाबिंब' में छपी कहानियों को पढ़ कर मुझे भी कहानी लिखने की प्रेरणा मिली. अपनी टूटी-फूटी हिंदी में काफ़ी मेहनत से एक कहानी लिखी जिसको सुधार कर सक्सेना जी ने मुझे वापस कर दिया. मुझसे जितना बन पड़ा कहानी को दोबारा लिखा. अंत में 'मध्यांतर' शीर्षक से वह कहानी 'कथाबिंब' में छपी. मुझे लगा कि मैं सातवें आसमान में उड़ रहा हूं. आजकल स्वास्थ्य बहुत ठीक नहीं है. 'कथाबिंब' जब भी डाकिया लाता है मैं शीघ्र ख़तम कर लेता हूं और अगले अंक की प्रतीक्षा करने लगता हूं. बहुत दिनों से अपने विचार 'कथाबिंब' के पाठकों से शेयर करना चाहता था.

– डॉ. वी. रामशेष

बीएच-१/४३, केंद्रीय विहार,
से-११, खारघर, नवी मुंबई-४१०२१०

डीटीपी के लिए संपर्क करें

समाचार पत्र, पुस्तकों व पत्रिकाओं, इनव्हिटेशन कार्ड, विजिटिंग कार्ड के डीटीपी, ले-ऑउट और डिझाइन के लिए संपर्क करें.

सुगी आर्ट्स

३०२, वडाला उद्योग भवन, वडाला,
मुंबई-४०० ०३१.
मो.नं.: ९८३३५४०४९०/९८९२८३११४६

कहानी

वृंदा ने कहा था...

कमल कपूर

'समर पॉम सोसायटी' के अपने ख़ूबसूरत अपार्टमेंट की बॉलकनी में बैठे वह नीले धुले खुले आसमान के शामियाने तले पसरे चटक हरे आलोक को देख-देख मुग्ध हो रहे थे और सोच रहे थे कि जिसने इस सोसायटी की कल्पना की होगी और जिसने इसे मूर्त रूप दिया होगा, दोनों ही उच्च कोटि के कलाकार रहे होंगे. उन्हें याद आ रही थी... सवा साल पहले की जून की वो दहकती दोपहरी, जब एक अदद मकान की तलाश में शहर भर की ख़ाक छान कर वह अपने प्रॉपर्टी डीलर मिश्रा जी के साथ यहां आये थे और यहां का सौम्य सौंदर्य देख कर, बरबस उनकी जुबान से दो शब्द फिसले थे... 'वाह! वाह!' यूं लग रहा था उन्हें जैसे किसी ने अमरावती नगरी का एक हिस्सा काट कर यहां सजा दिया है.

'मिश्रा जी! आप कई दिनों से शहर भर में भटका रहे हैं मुझे. सबसे पहले यहीं क्यों नहीं ले कर आये?' शिकायती लहज़े में पूछा. उन्होंने तो वह मुस्कुराए... व्यंग्यपूर्ण ढंग से,' मैंने सोचा कि शायद आप... आ.. प.....की...

'... कि इस सोसायटी में घर ख़रीदने की औक़ात नहीं मेरी, यही सोचा होगा न आपने? बहुत ग़लत सोचा,' मिश्रा जी की बात काटी थी. उन्होंने और वह झेंपते हुए खिसियानी हंसी हंसे थे,' अरे छोड़िए न और चलिए घर दिखायें आपको.'

अपार्टमेंट्स की ओर जाने वाले साफ़-शफ़्फ़ाक संगमरमरी 'वॉक वे' के दोनों ओर क्रम से गुलमोहर और अमलतास के लाल-पीले पेड़ करीने से कतारबद्ध सजे खड़े थे. उस रहगुज़र से गुज़रते हुए वह बोले, 'इस सोसायटी का नाम गुलमोहर या अमलतास सोसायटी होना चाहिए था. नहीं मिश्रा जी?'

'बिलकुल नहीं जी! ये दोनों तो महीने-दो महीने के मेहमान होते हैं, जबकि पॉम तो बारहमासी है और पॉम की जितनी जातियां-प्रजातियां आपको यहां देखने को मिलेंगी, उतनी और कहीं नहीं.'

कुछ देर बाद वे दोनों चौथी मंज़िल पर स्थित एक अभिराम अपार्टमेंट के भीतर खड़े थे और वह मंत्र-मुग्ध से चहुं ओर निहारते हुए सोच रहे थे कि जब मिश्रा जी इसकी तारीफ़ में ज़मीन-आसमान एक कर रहे थे तो उन्हें उनका कहना अति अतिश्योक्तिपूर्ण लग रहा था पर अब लगा कि कुछ कम ही तारीफ़ की थी उन्होंने. दो बेडरूम और एक लिविंग रूम वाले घर में तीन खुली बॉलकनियां थीं और अलमारियां, ड्रेसिंग-टेबल और स्टडी-टेबल वग़ैरह, सब दीवारों में फिट और किचन में कुकिंग-रेंज़, माइक्रोवेव और फ्रिज़ देख कर हैरान रह गये थे वह,' ये सब भी....?

उनकी बात पूरी होने से पहले ही बोल उठे थे मिश्रा जी, 'जी! आजकल वेस्टर्न स्टाइल से हो रहा है सब. देखिए तो गैस भी पाईप-लाइन से है. राम कसम, भाभी जी ख़ुश हो जायेंगी देख कर... वो देखिए खिड़की से पूरा आसमान नज़र आ रहा है. भाभी जी को कल ही दिखा कर नक्की कर दीजिए जनाब.'

'भाभी जी?' मन में हूक उठी थी. वह होतीं तो वह आते ही क्यों यहां. दर्द को सीने में ही दबा कर आहिस्ता से बोले, 'ठीक है. यह घर मेरा हुआ. कब, कैसे और किस तरह पेमेंट करनी होगी मुझे?'

मिश्रा जी समझाते रहे और वह समझते रहे और समझ कर घर लौट आये. घर... वह घर उन्हें कभी भी

अपना नहीं लगा था, पर उस दिन तो पूरी तरह ही बेग़ाना लग उठा था. आंगन में गाड़ी खड़ी करके एक भरपूर नज़र उस नन्हीं-सी बगिया पर डाली. उन्होंने, जिसमें वृंदा की जान बसती थी और जो बारह महीने हरियाली और मौसमी फूलों से गुलज़ार रहती थी, पर आज वह सूखी-सूनी और उजाड़ पड़ी थी. उन्हें तो याद भी नहीं कि अंतिम बार कब पानी पिया था इस बेचारी ने... शायद उस दिन की सुबह, जिस दिन की सांझ इनकी मालकिन ने अंतिम सांस से पहले गंगा-जल पिया था. एक लंबी ठंडी सांस ले कर वह भीतर आ गये और सात कमरों वाले उस बड़े से घर में भूत की तरह भटकने लगे. ढेरों धूल-माटी लिपटे सामान से अटा पड़ा था हर कमरा. वृंदा की गृहस्थी की चीज़ें, अम्मा-बाबूजी और वृंदा के दादी-दादू का भी. सामान की उस भीड़ से कबके उकताये हुए थे वह. वृंदा की अलमारी खोली तो लगा कि जैसे विविध रंगी साड़ियों के किसी शो-रूम के सामने खड़े हैं. पलकें नम हो आयीं उनकी...वृंदा मुस्कुराते हुए जैसे मन की चौखट पर आ खड़ी हुई. फिर उस रात, अपने और वृंदा के बड़े से शीशम के पलंग पर लेटे वह तो नींद न आयी आंखों में ... सिर्फ़ और वृंदा की बहुरंगी यादें ही आयीं... जो उन्हें बरसों पीछे ले गयीं... इस घर के बग़ल वाले घर में 'पेइंग गेस्ट' की हैसियत से आये थे वह... इस शहर के स्टेट बैंक में असिस्टेंट मैनेज़र के पद पर नियुक्ति हुई थी उनकी और जल्दी ही इस घर... 'वृंदा-कुंज' की इकलौती संतान कनक-छरी सी सुंदर-सुकोमल वृंदा से दिल लगा बैठे थे और वह...? वह तो शिद्दत से दीवानी थी उनकी. बाबूजी को पता चला तो उन्होंने वृंदा के हाथ संदेशा भिजवाया कि अपने घर से किसी बड़े को साथ ले कर शीघ्र आओ पर वह अकेले पहुंचे तो बाबूजी ने रूखे स्वर में पूछा, 'कहा था न कि किसी बड़े को साथ लाना, फिर अकेले क्यों आये?'

'जी ! कोई नहीं है मेरा. अनाथालय में पला-पढ़ा हूं, इसलिए....'

'शादी करना चाहते हो हमारी बिटिया से?'

'जी!'

'पहले यहां से... हमारा मतलब है बग़ल वाले घर से बोरिया-बिस्तर ले कर कहीं और शिफ़्ट करो, फिर आगे बात करेंगे और सुनो घर थोड़ा ठीक-ठाक लेना, जहां हमारी बच्ची सुविधा से गृहस्थी बसा सके.'

कथाबिंब की हितैषी एवं नियमित कथाकार

और उनकी गृहस्थी बस गयी वृंदा के साथ. वृंदा जितनी सुंदर थी, उतनी ही सुगढ़ गृहिणी भी सिद्ध हुई. अम्मा-बाबूजी के लाड़ ने उसे बिगाड़ा नहीं, रेशम-सा संवारा था. ज़िंदगी में पहली बार घर का सुख पाया था उन्होंने. फिर बरस भर बाद ही घर-आंगन जुड़वां ख़ुशियों की किलकारियों से भर उठा. वृंदा ने दो गदबदे गुलगोथने प्यारे से बेटों को जन्म दिया था. बाबूजी तो जैसे फिर से युवा हो गये थे. हर पल कहते, 'रिटायरमेंट के बाद का सारा वक़्त अपने इन बाल-गोपालों के नाम लिख दिया जी हमने.'

पर वह वक़्त काल ने उनके नाम लिखा ही नहीं था. एक सुबह दफ़्तर गये थे ख़ुद गाड़ी चला कर और सांझ लौटे एंबुलेंस में... जीवित नहीं मृत. कैसे संभाला था उन्होंने अम्मा जी, वृंदा और बच्चों को.... अब याद करते हैं तो सिहर उठते हैं. सब कुछ सही तरीक़े से संभलने-संभालने के लिए उन लोगों को किराये का घर छोड़ इस घर में शिफ़्ट होना पड़ा था. इतने बड़े घर में अम्मा को अकेला कैसे छोड़ सकते थे वे लोग? उनका मन तो नहीं था पर सबके हित में यही निर्णय उचित था. हां, एक हल्की सी राहत की सांस ज़रूर ली थी उन्होंने कि जो किराये के रुपए बचेंगे वो बच्चों... उदय और उज्ज्वल की सही परवरिश में काम आयेंगे.

स्थितियां जल्दी ही सामान्य हो गयीं. अम्मा बच्चों में व्यस्त हो गयीं और वृंदा ने घर की देखरेख का पूरा ज़िम्मा ओढ़ लिया. ज़िंदगी मुस्कुरा उठी थी खुल कर. बच्चे ज़हीन निकले. दसवीं पास की थी उहोंने तब जब एक रात चुपचाप बिना किसी को कष्ट दिये और पाये अम्मा भी बाबूजी के पास सांचे धाम चली गयीं. वृंदा बुरी तरह बिखरी, फिर

जैसा प्रकृति का नियम है धीरे-धीरे सिमट-संभल भी गयी.

अगले तमाम खट्टे-मीठे बरस जैसे किसी जादूगर के खेल-तमाशे की तरह झट-झट गुज़रते चले गये. उदय-उज्ज्वल उच्च शिक्षा के लिए यू. एस. गये तो वहीं के हो कर रह गये. जॉब भी वहीं कर लीं और ब्याह कर घर भी वहीं बसा लिये. कुल जमा सिर्फ़ तीन बार आये यहां, जिसमें से दो बार घर में नहीं, होटल में रहे. आगे जा कर तो दोनों ने हठ ही ठान ली, 'अच्छी जगह नया घर लोगे तभी आयेंगे. उस फटीचर मोहल्ले के तबेले से घर में न बच्चे आने को तैयार होते हैं और न उनकी माएं.'

'... और तुम दोनों सपूत' अनायास ही किंचित कड़वाहट घुल आयी थी उनके स्वर में.

'पापा ! इस टोन में बात न करें आप. मुझे आपसे बात ही नहीं करनी,' कह कर फ़ोन काट दिया था उदय ने.

उन्होंने दो-एक बार दबे स्वर में वृंदा से कही भी थी घर बेचने की बात पर बिना भड़के उसने दृढ़ स्वर में कहे थे सिर्फ़ दो वाक्य, 'शेखर ! अब कही है पर फिर न कहना ऐसी बात. अम्मा-बाबूजी की धरोहर हम कैसे बेच सकते हैं?'

वक़्त के क़दम कुछ और आगे बढ़े...न जाने क्यों वृंदा मुर्झाने लगी थी. उसकी भूख मरने लगी थी और वज़न भी घटने लगा था. कुछ खाती तो पेट में हल्का-सा दर्द उठता, जो धीरे-धीरे बढ़ता गया. जब-तब बिन बुलाये मेहमान सा बुखार भी चला आता. छुटपुट इलाज़ चलता रहा पर मर्ज़ कम होने की बजाय बढ़ता गया तो शेखर ने ज़िद्द करके मैदान्ता में पूरा चैकअप कराया तो... जो रिज़ल्ट आया... उफ़! उनके पांव तले की ज़मीन खिसक गयी जैसे और सर पर मारक गाज़ गिर कर ध्वस्त कर गयी ज्यों उन्हें... लिवर का कैंसर था... अपने आख़िरी स्टेज़ पर. टूटे दिल की सारी किरचें बटोर कर अपनी सीधी-सरल वृंदा को फूलों की डाली–सा बांहों में समेट कर घर ले आये थे... एक भयंकर युद्ध से जूझ कर जीतने का संकल्प लिये. डॉक्टर न वृंदा की ज़िंदगी की समय-सीमा भी बता दी थी... ६ महीने से ले कर अधिकतम एक साल. यह बीमारी अपनी नाजुक-सी संगिनी से छुपा गये थे वह पर वह जान ही गयी थी और कातर स्वर में बोली थी, 'जैसे भी हो एक बार मुझे मेरे बच्चों से मिला दो शेखर प्लीज़.'

उसने फ़ोन कर बच्चों को सब बताया तो पल भर उस ओर ख़ामोशी पसर गयी, फिर उदय ने कहा, 'पापा! अच्छे से अच्छा इलाज़ कराएं मम्मा का. पैसे की फिक्र न करें. हम भेजेंगे जितना चाहिए.'

'पैसे की तो हमारे पास भी कमी नहीं बेटा! तुम्हारी मां तुम दोनों से मिलना चाहती है.'

'पूरी कोशिश करेंगे पापा! पर कह नहीं सकते कब आ पायेंगे.' यह जवाब था उदय का.

हताश नहीं हुए थे वह और नर्मी से कहा था, 'तुम लोग नहीं आ सकते तो बताओ. मैं जैसे भी हो उसे ही वहां ले आता हूं.'

'जल्दबाजी न करें पापा! दो-चार दिन में बताते है न आपको.'

और फिर दस दिन बाद बताया, 'हम नौकरी पर सुबह सात बजे के गये शाम सात बजे लौटते हैं. बच्चे भी तब तक 'डे केयर' में रहते हैं. आप अनजाने देश में अकेले कैसे संभाल पायेंगे सब? और फिर यहां मेडिकल सर्विस भी तो बहुत महंगी है.'

बेटों के जवाब की भनक वृंदा को लग गयी थी... नतीज़न उसकी आंखों में पल-पल जलने वाले इंतज़ार के दिये भक्क से बुझ गये. फिर उसने कभी उनका नाम भी नहीं लिया और फ़ोन आने पर उनसे कभी बात भी नहीं की. उस क्षति की पूर्ति शेखर ने उसकी जी जान से सेवा-टहल करने की कोशिश कर की. ज़िंदगी भर वृंदा ने उन्हें सुख ही सुख दिया था, अब उनकी बारी थी. पैसे की कमी थी नहीं. चीफ़ ज़नरल मैनेज़र की पोस्ट पर थे सो बढ़िया वेतन था, मेडिकल का पूरा ख़र्चा मिलता था. वृंदा के पास अपना ही बहुत पैसा था... अम्मा-बाबूजी का छोड़ा हुआ. ज़रूरत थी ऐसे किसी व्यक्ति की जो नि:स्वार्थ भाव से वृंदा की सेवा कर सके. बहुत सोचने पर वह उन्हें मिल ही गया.... कौन? वह ख़ुद. उनसे बढ़ कर कौन अपना था उसका? तुरंत निर्णय लिया और डेढ़ साल पहले ही रिटायरमेंट ले ली और जुट गये अपनी पत्नी-प्रिया की सेवा में. उसकी छोटी से छोटी इच्छा पर न्यौछावर हो जाते. वह तनिक सा 'हाय' भी करती तो सीने से लगा उसका दर्द सोखने की कोशिश करते. कीमो थेरेपी से जब उसके लगभग सारे बाल झड़ गये तो बॉब कट बालों की प्यारी सी विग ला कर उसके सर पर सजा दी.

बच्चे आने की बात करते रहे, बहाने बनाते रहे पर आये कभी नहीं और शायद वृंदा के जाने की बेला आ गयी. एक सुबह जब वह उसका मुख पोंछ कर माथे पर सुर्ख

बिंदिया टांक रहे थे तो उसने उनका हाथ थाम लिया था और भीगे स्वर में कहा था, 'शेखर ! मेरी एक बात मानोगे...? एक नहीं दो, बल्कि तीन बातें.'

'कहो न मेरी वंदू! एक दो तीन नहीं सौ-हज़ार बातें मानूंगा और उम्र भर मानता ही चला जाऊंगा.' मुस्कुरा कर कहा था उन्होंने.

'अरे, उम्र ही तो नहीं बची अब मेरे पास. तीन ही बातें मान लेना .... काफ़ी होगा. पर जब तक मेरी बात पूरी न हो आप बीच में एक शब्द भी नहीं बोलेंगे. खाओ मेरी क़सम.'

'लो खायी तुम्हारी क़सम.'

'पहली बात कि मेरे मरने की ख़बर बच्चों को न देना क्योंकि वो आयेंगे नहीं और इस बात से आप दुख पायेंगे और मेरी आत्मा तकलीफ़ ...

'न करो मरने की बातें वंदू! मैं...'

'अ...हं ! देखिए क़सम तोड़ रहे हैं आप,' उनकी बात काट कर मुस्कुरायी थी वह फिर पल भर मौन रह कर आगे बढ़ी थी,' मेरा संस्कार विद्धुत-दाह से हो. कोई कर्मकांड नहीं, मातमपुर्सी नहीं और अस्थी-विसर्जन भी नहीं. मैं अपना हर अंग दान करना चाहती थी पर यह मरी कर्कट बीमारी .... और तीसरी बात... मैं जानती हूं कि आप सदा इस घर में बेमन से रहे इसलिए मेरे जाने के बाद आप इसे बेच कर अपनी मनचाही जगह पर मनपसंद घर ख़रीद कर सुकून से रहें. मैंने यह घर आपके नाम कर दिया है... यह लीजिए,' कह कर उसने तकिये के नीचे से कागज़ात निकाल कर उनके हाथ में धर दिये थे और वह उसे सीने से लगा कर फूट-फूट कर रोये थे, 'न जाओ न मेरी वंदू मुझे छोड़ कर. तुम्हारे सिवा मेरा है ही कौन?'

रोयी वह भी कम न थी. जाना वह भी नहीं चाहती थी पर चली गयी... सप्ताह भर बाद ही कार्तिक पूर्णिमा की रात उनकी भोली चांदनी चिर निद्रा में सो गयी और उन्होंने वही किया जो वह कह गयी थी पर न-न करते भी कुछ संगी-साथी और पास-पड़ोस वाले आ ही जुटे थे उसके संग. फिर चौथे दिन उज्ज्वल का फ़ोन आया...अंगारे बरसाता, 'पापा! हमारी मां चली गयी और आपने हमें ख़बर भी नहीं की?'

'क्योंकि उसने ही मना किया था.'

'झूठ बकते हैं आप. वह ऐसा क्यों कहतीं? हम बेटे थे उनके.' उदय चिल्लाया था इस बार.

'यह बात उसने डायरी में भी लिखी थी. कहो तो स्कैन कर भेजूं? लिखाई तो पहचानते हो न उसकी? या वह भी भूल गये?'

'हम आपको कभी माफ़ नहीं करेंगे और न ही आपको पापा कहेंगे,' दोनों के समवेत स्वर थे.

'न कहना पर लगे हाथ एक ख़बर और संभाल लो कि मैं यह घर बेचने जा रहा हूं, जिसे तुम तबेला कहते हो.'

'ऐसा कैसे कर सकते हैं आप? वह घर हमारी मम्मा के नाम है, इस नाते हमारा हक़ है उस पर.'

'वह घर मेरे नाम कर गयी है वह. और कुछ?'

'एक नंबर के शातिर इंसान है आप. चालाकी से....

आगे कुछ नहीं सुना उन्होंने और फ़ोन काट दिया और उसकी तार भी निकाल दी. उसी दिन अपने मोबाइल का सिम भी बदल दिया उन्होंने और फ़ेसबुक से भी जुदा हो गये और अब इस घर से भी जुदा होने की घड़ियां आ पहुंची थीं... यादों की घनी धुंध से बाहर निकलते हुए सोचा उन्होंने.... रात आधी से ज़्यादा गुज़र चुकी थी. उठ कर किचन में गये और चाय बना कर, प्याला हाथ में थामे बैठक में चले आये. चाय पीते हुए सोचने लगे कि अब वृंदा की तीसरी इच्छा पूरी करने जा रहे हैं वह. पहले वह घर ले लें फिर इस घर का सौदा करेंगे.... इस घर का सौदा? जिसे वृंदा अपने पुरखों की धरोहर मान कर पूजती थी. क्यों बेचें यह घर वह? नहीं बेचेंगे इसे वह और इसे 'वृंदा-कुंज' से 'वृंदा-वृद्धाश्रम' में बदलेंगे वह. इस तरह उन्हें भी जीने का एक मकसद मिल जायेगा. यह तो नहीं कहा था वृंदा ने लेकिन कुछ तो वह अपनी इच्छा से भी कर सकते हैं न!

सब कुछ महीने भर के भीतर हो गया. वह बिना कोई सामान लिये यहां आ गये फिर 'वृंदा-वृद्धाश्रम' की तैयारियां और कार्तिक-पूर्णिमा... वृंदा की पहली बरसी के दिन आश्रम का शुभारंभ हो गया.

.... उस दिन... उस रात की यात्रा कर मन-पाखी फिर यहीं... अपनी इस जन्नत के नीड़ में लौट आया था. सुनहरी सांझ सुरमई हो कर ढलने की ओर उन्मुख थी कि सहसा उन्हें याद आया ... तीन दिन बाद कार्तिक-पूर्णिमा है, उनकी वंदू की दूसरी बरसी और वृंदा-वृद्धाश्रम का पहला स्थापना-दिवस. एक बड़ा समारोह होने जा रहा है आश्रम में, जिसकी बहुत-सी तैयारी अभी बाक़ी है... चलना चाहिए मुझे, स्वयं से कहते हुए वह ताला लगा कर 'लिफ़्ट' की ओर बढ़ गये.

२१४४ / ९ सेक्टर,
फरीदाबाद-१२१००६(हरियाणा)
मो. : ०९८७३९६७४५५

कहानी

विकल्प

राजेंद्र वर्मा

उस दिन रविवार था... घर पर टी. वी. के सामने बैठा दर्शक-धर्म निभा रहा था. नाश्ता देने के बाद पत्नी ने बाज़ार से कुछ सामान लाने की फ़रमाइश कर दी. जाना तो नहीं चाहता था, पर 'गृह मंत्रालय' के आगे किसकी चली है!

बाज़ार से लौटकर सामान का बैग पत्नी को थमाया ही था कि मेरा मोबाइल बज उठा — दिल्ली से किसी का फ़ोन था. बात शुरू करने पर पता चला कि निर्मल का फ़ोन था. निर्मल मेरा बहुत अच्छा दोस्त था, लेकिन हम लोग पंद्रह-सोलह सालों से नहीं मिले थे... मेरे पास उसका नंबर भी नहीं था कि मैं ही बात कर लेता... उसने ही कहीं से मेरा मोबाइल नंबर प्राप्त किया और अब बात कर रहा है... पता चला, आज ही उसे 'लखनऊ मेल' से वापस जाना है! मैंने उससे मिलने का मन बना लिया... उससे बात कर किशोरावस्था के चित्र मनोमस्तिष्क में घूम गये — पढ़ाई के साथ-साथ मौजमस्ती, चुहलबाजी, सिनेमाबाजी, लड़कियों की बातें और न जाने क्या-क्या? यादों की 'गोमती' में नहा-तैर मज़ा आ गया. वह है तो लखनऊ का ही, लेकिन दिल्ली में दस-बारह सालों से सेटल्ड है, इसलिए अब वह 'दिल्ली वाला' और मैं 'लखनऊ वाला' कहलाता हूं. चलो, अच्छा ही है कि आदमी के साथ शहर जुड़ने पर वह और उसका शहर अकेलेपन के शिकार नहीं होते — एक-दूसरे के संगी-साथी और पहचान बन जाते हैं, वरना आजकल की भाग-दौड़ की मशीनी ज़िंदगी में कौन किसे पूछता है!

निर्मल से मेरी दोस्ती फ़र्स्ट इयर से है. हाई स्कूल में भी एक ही सेक्शन में थे, पर यों ही जान-पहचान थी. लेकिन फ़र्स्ट इयर में भी जब हम लोग एक ही सेक्शन में आये, तो घनिष्ठता बढ़ने लगी... थोड़े दिनों के बाद तो हालत यह हो गयी कि हम दोनों साथ-साथ नाश्ता करते और स्कूल के लिए भी एक ही साइकिल पर निकलते! इंटरवल में भी साथ-साथ कुछ खाते-पीते और जब कोई घंटा ख़ाली होता, तो फील्ड में घास पर साथ बैठकर घर-परिवार की ख़ूब बातें करते और भविष्य की योजनाएं बनाते! वह कवि बनना चाहता था और मैं लेखक! उसने तो एक डायरी ही भर डाली थी, जबकि मेरे पास कुल जमा दो कहानियां थीं!.. शैलेंद्र और 'नीरज' की तरह वह फ़िल्मों में साहित्यिक गीत लिखना चाहता था, तो मैं आज का 'प्रेमचंद' बनना चाहता था... लेकिन घर-परिवार की ज़िम्मेदारियों ने हमारी कल्पनाओं के पंख क़तर दिये थे.

हमारे भविष्य की योजनाओं की दिशा बदल चुकी थी... निर्मल पी. एम. टी. में सेलेक्ट होकर डॉक्टर बन गया और मैं एक बैंक में अधिकारी!... कहानी कभी-कभार लिख लेता हूं, पर अभी तक क़िताब-भर की कहानियां नहीं हो पायीं! मन में जिज्ञासा थी कि निर्मल की कविताओं का क्या हुआ?

निर्मल से मिलने मैं स्कूटर से जा रहा था. जिस मोहल्ले में उसका पुश्तैनी घर था, मेरे घर से वह कोई १०-१२ किलोमीटर दूर था. उसके मोहल्ले में मैं पहुंचने वाला था... मेरा मन उससे मिलने, बातें करने और बीवी-बच्चों के बारे में ख़ूब बातें करने को मचल रहा था कि अचानक मैं स्कूटर सहित गिर पड़ा...

दुर्घटना हो चुकी थी... मोहल्ले की प्रवेश-गली में कुछ बच्चे लुका-छिपी का खेल, खेल रहे थे... अचानक पांच-छः वर्ष का एक लड़का गली में से दौड़ता हुआ

निकला और स्कूटर से टकरा गया था. स्कूटर वैसे धीमा था, फिर भी वह न संभला और गिर पड़ा, जबकि मैं थोड़ी दूरी पर गिरा था. लड़का स्कूटर के नीचे दबा था. मैंने लपककर स्कूटर उठाना चाहा, पर खड़े होते ही गिर पड़ा. हिम्मत कर फिर उठने की कोशिश की, पर फिर गिरा.... मेरे पैर में मोच आ गयी थी.

पलक झपकते ही लोग इकट्ठे हो गये. पहले मुझे चार-छः थप्पड़ और लातें मिलीं, फिर एक बुजुर्ग के हस्तक्षेप से स्कूटर खड़ा किया गया. लड़के को गोद में उठाया गया. वह अचेत था, शायद उसके सिर में अंदरूनी चोट आयी थी. बाहर कोई ज़ख़्म नहीं दिख रहा था... शर्ट की ऊपरी जेब में मोबाइल था. जेब टटोली, तो पता चला, ग़ायब था. मैं निर्मल के घर जाकर सूचना देना चाहता था, पर भीड़ ने मेरी नहीं सुनी.

मेरे ही स्कूटर पर एक नवयुवक मुझे तथा बच्चे को नज़दीक के नर्सिंग होम ले गया. इमरजेंसी में बैठे डॉक्टरों ने 'मेडिको लीगल' केस कहकर हाथ लगाने से इनकार कर दिया... एक और नर्सिंग होम में कोशिश की गयी कि इलाज़ हो जाये, पर वहां के डॉक्टर ने भी हाथ लगाने से इनकार कर दिया. बीस-पचीस मिनट बाद हम लोग के. जी. एम. सी. पहुंचे.

पुलिस को फ़ोन पर बुलाकर लड़के को भर्ती कर लिया गया... इलाज़ शुरू हुआ... ब्रेन हैमरेज़ था. चौबीस घंटे के 'ऑब्ज़र्वेशन' के सिवाय कोई चारा न था... मेरी टांग का एक्स-रे हुआ — फ्रैक्चर निकला. मैं भी भर्ती हो गया. प्लास्टर चढ़ा.... दर्द की दवाई खाने पर आराम मिल गया.

शाम के पांच बज रहे थे. लड़का अभी भी बेहोश था. मैंने डॉक्टर से घर जाने की अनुमति मांगी. उसने पुलिस चौकी से अनुमति लेकर जाने को कह दिया. पुलिस चौकी संदेश भिजवाया गया. एक कांस्टेबिल आया. मैंने उसे बैंक का अपना आई-डी कार्ड और ड्राइविंग लाइसेंस दिखाया... मुझ पर यक़ीन करते हुए उसने स्कूटर के काग़ज़ात, ड्राइविंग लाइसेंस और हज़ार रुपये नक़द अपने पास रख मुझे घर जाने दिया. स्कूटर भी रोक लिया गया था. वैसे भी मैं चाहकर उसे नहीं ला सकता था.

लड़के की मां मुझे क़ैद कर रखना चाहती थी, पर कांस्टेबिल ने उसे डांट दिया. लड़के के पिता को भी मेरे घर आने पर कोई ऐतराज़ न था.

मार्च १९५५ (बाराबंकी, उ. प्र.)

: प्रकाशन :

कहानी, व्यंग्य, लघुकथा, निबंध-आलोचना, गीत, ग़ज़ल, दोहा आदि विधाओं में अठारह पुस्तकें प्रकाशित. महत्वपूर्ण संकलनों में सम्मिलित.

: पुरस्कार/सम्मान :

उ. प्र. हिंदी संस्थान के व्यंग्य (१९९९) एवं निबंध (२०१२) के नामित पुरस्कारों सहित देश की अनेक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

: मूल्यांकन :

लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा रचनाकार पर एम् . फिल., कई शोधग्रंथों में संदर्भित. कुछ लघुकथाओं और ग़ज़लों का पंजाबी में अनुवाद. चुनी हुई कविताओं का अंग्रेज़ी में अनुवाद.

रात आठ बजे के क़रीब रिक्शे से घर पहुंचा. मेरे अस्पताल छोड़ने तक लड़का बेहोश था. मेरा मन उसी में लगा हुआ था. उसका शांत चेहरा कभी प्यारा लगता, कभी डरावना! चिंतित था — कहीं मर गया, तो क्या होगा?

लड़के के पिताजी एक नज़र में सुलझे हुए आदमी लगे — वे चिंतित तो थे, पर लड़के की मां की तरह अधीर नहीं; आक्रोश में नहीं!... मैंने पत्नी से कहा कि अस्पताल जा कर देख आये, पर उसने मना कर दिया. बेटा अभी चौथे क्लास में पढ़ रहा था — उसे भेजने का प्रश्न ही नहीं था. घर में और कोई था नहीं कि उसे भेज पाता. मेरे पैर का दर्द बढ़ गया था. दुबारा रिक्शे पर लदकर अस्पताल जाने की हिम्मत मुझमें न थी.

किसी तरह रात कटी. सवेरे ही एक आदमी मेरा घर पूछते-पूछते आ गया. मैं समझ गया, अस्पताल से आया होगा!... मेरी धुकधुकी बढ़ गयी... आशंका सच निकली

— लड़के को बचाया नहीं जा सका था! पोस्टमार्टम से पहले पुलिस ने मुझे बुलाया था.

मैं उसके साथ अस्पताल चल पड़ा. पंचनामा तैयार हुआ. मृतक के पिताजी ने अपने बयान में कहा कि दुर्घटना में मेरी कोई ग़लती नहीं थी. पुलिस वाले फिर भी मुझसे खाने-पीने के चक्कर में थे. मैंने साफ़ मना कर दिया... मृतक के पिता ने उनसे कुछ बात की. मैं डरा कि आगे का कोई षड्यंत्र होगा, पर मैंने जी कड़ा किया — 'जो होगा, देखा जायेगा!...'

पोस्ट-मॉर्टम हुआ... लड़के का अंतिम संस्कार हुआ. लेकिन मैं उसमें शामिल न हो सका! अजीब-सा अपराध बोध मुझ पर हावी था.

मन-ही-मन मैंने कई बार दुर्घटना का विश्लेषण किया... स्वयं को दोषी नहीं पाता था, परंतु पता नहीं क्यों मृतक का चेहरा मेरी आंखों के सामने बार-बार उपस्थित हो जाता और मुझे अपराधी ठहराता! मुझे लगता कि उसके पिता के चेहरे का गहरा अवसाद मेरे चेहरे पर जैसे चिपक गया हो. मैं बार-बार अपने चेहरे को रुमाल से साफ़ करने लगता! पत्नी समझाती, 'तुमने कोई अपराध नहीं किया है. जो होनी होती है, होकर रहती है!' लेकिन उसकी बात क्षण भर में प्रभावहीन हो जाती! मेरा बेटा भी किसी-न-किसी बहाने मेरे पास आ जाता और मुझसे इधर-उधर की बातें करने लगता. पढ़ाई को लेकर वह केवल उन्हीं सवालों को पूछता, जिनके बारे में उसे पक्का विश्वास था कि उत्तर मुझे आते होंगे. महीने भर में मैं अपने बेटे को अचानक बड़ा होते देख रहा था....

मैं दुखी अवश्य था, पर क्या कर सकता था? मृतक मेरे ही बेटे के बराबर था. न जाने क्यों उसके चेहरे में, मैं अपने बेटे का चेहरा देख कांप उठता था! मुझे लगता कि दो पुलिस वाले मेरे घर की ओर चले आ रहे हैं. मेरी गिरफ़्तारी करने... पत्नी के अलावा किसी से भी मन की बात शेयर नहीं कर सकता था. ऑफ़िस के एक-दो अच्छे दोस्त थे, पर मोबाइल न होने के कारण उनसे बात भी न हो पाती थी. मेरे पास ही मोबाइल था. पत्नी के पास मोबाइल था नहीं. उनके नाम से तुरंत ख़रीदा भी नहीं जा सकता था, क्योंकि उनके पास कोई आई. डी. कार्ड नहीं था. वोटर कार्ड बना नहीं था. ज़रूरत न होने के कारण डी. एल. भी बनवाया नहीं गया था. हाई स्कूल और इंटर की मार्कशीटें थीं, पर वे फ़ोटो आई. डी. के लिहाज से बेकार थीं.

बिस्तर पर पड़े-पड़े किसी मानसिक रोगी की तरह मैं डरा-डरा रहता. किसी तरह बीस-पच्चीस दिन बीते. इस बीच डुप्लीकेट सिम से मोबाइल एक्टिवेट हो चुका था. मेरा प्लास्टर कट चुका था. मानसिक रूप से भी दुर्घटना से भी उबर चुका था. धीरे-धीरे चलने लगा था, पर अभी घर पर ही था. ऑफ़िस से लोग मिलने आ जाते थे... किसी तरह समय बीत रहा था. पंद्रह दिनों तक बिस्तर पर पड़े-पड़े और दस-बारह दिनों से घर ही में चल-फिर रहा था. आज तक की मेडिकल लीव की एप्लीकेशन भिजवा रखी थी. कल संडे था और परसों बैंक ज्वाइन करने की सोच रहा था. इस बीच मैंने कुछ कहानियां और दो उपन्यास पढ़ डाले! मेरे लेखकीय मन में ख़ूब उथल-पुथल मची थी. एक कहानी का ड्राफ़्ट दिमाग़ में घूम रहा था. दो-तीन कविताएं भी उमड़-घुमड़ रही थीं.

आज रविवार था. मैं पूरी तरह से स्वस्थ अनुभव कर रहा था. अपराध-बोध के बादल छंट चुके थे. मन के आकाश में नन्ही गौरया की भांति एक कविता उड़ान भरना चाहती थी. मैं गुनगुना उठा... अचानक पत्नी ने कमरे में पदार्पण किया. संभवतः मेरी गुनगुनाहट सुन वे स्वयं को रोक न पायीं. मेरे चेहरे के भावों को देख कर वे तसल्ली करना चाह रही होंगी कि चलो, ईश्वर की कृपा से अब सब ठीक है, अन्यथा वह मेरी गिरी तबीयत को देख-देख घुटती रहती थी....

मैं ड्राइंग रूम में बैठा अख़बार पढ़ रहा था कि बेटा पास आकर बैठ गया. फिर धीरे से कहा, 'पापा! मेरे क्लास टीचर आपसे मिलने आये हैं!'

'कौन शर्मा जी?... तो उन्हें अंदर बुला न!' मैंने बेटे से कहा.

'पापा! शर्मा जी ने नौकरी छोड़ दी. ये नये वाले हैं, अभी आप उनसे मिले ही नहीं हैं! पिछले महीने ही तो ये आये हैं! तब से एक ही बार 'पैरेंट-टीचर' मीटिंग हुई है और हम लोग उसमें जा ही नहीं पाये!

'अच्छा, ठीक है! उन्हें बुलाओ!' मैं सोच रहा था कि वे मेरे बेटे की कोई शिकायत लेकर आये होंगे, लेकिन अगर ऐसी कोई बात होती, तो उसकी कुछ भनक पहले भी तो लगनी चाहिए थी....

मैं सोच नहीं पा रहा था कि बेटे के क्लास टीचर घर पर क्यों आयेंगे! अचानक एक बात कौंधी 'हो सकता है,

लघुकथा

राजनीति के होनहार

ज्ञानदेव मुकेश

दो लड़के थे. एक अपने काम के प्रति बड़ा वफ़ादार और मेहनती था. वह अपना काम ख़ूब अच्छे तरीक़े से करता. लोग उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते. वहीं दूसरा बेहद लापरवाह और कामचोर था. वह अपना काम ठीक से नहीं करता. वह काम आधा-अधूरा या ख़राब तरीक़े से करके छोड़ देता. जब उसे डांट पड़ती तो वह झूठ और तिकड़म का सहारा लेता और अपनी वाकपटुता से डांटनेवाले को यह आश्वस्त कर देता कि उसने काम ठीक तरीक़े से किया है.

एक दिन कुछ लोगों ने कहा, "पहला लड़का काफ़ी उन्नति करेगा और सफलता की सीढ़ियां चढ़ेगा. मगर दूसरा लड़का काम में निठल्ला है और केवल तिकड़मबाज़ी करता है. वह इस हेराफेरी से कहां तक जायेगा? इसका तो भविष्य ही चौपट है."

तभी एक दूसरे व्यक्ति ने सभी को निःशब्द करने वाला प्रश्न रख दिया, 'लेकिन यह राजनीति में गया तब?'

फ़्लैट संख्या-१०२, ई-ब्लॉक, प्यारा घराना कॉम्प्लेक्स, चंदौती मोड़, गया-८२३००१(बिहार), मो. : ९४७०२००४९१.

उन्हें कोई बैंक का काम हो!'... मैं अभी उनके आने के बारे में अटकल ही लगा रहा था कि वे अंदर आये.

उन्हें देख मैं हतप्रभ रह गया — वे मृतक लड़के के पिता थे!... मैंने दुख प्रकट किया.

उन्होंने शांत भाव से कहा, 'होनी को कौन टाल सकता है!... लेकिन आपसे एक प्रार्थना है!'

'आदेश करें!', मैंने कहा.

'पता नहीं, क्यों मुझे आपके बेटे में अपना बेटा दिखायी देता है!... यदि आप मुझ पर भरोसा करें, तो मैं इसे कभी-कभार अपने साथ घुमाने-फिराने ले जाना चाहता हूं... मैं समझूंगा कि कुछ समय के लिए ही सही, मुझे मेरा बेटा वापस मिल गया है!'

उनकी बात सुन मैं हतप्रभ रह गया. पता नहीं क्यों, मेरा अपराधी मन सशंकित था. मैंने बेटे से पूछ कर उन्हें जवाब देने को कहा. उन्होंने कहा, 'कोई बात नहीं... लेकिन अगर बेटा तैयार हो, तो प्लीज़ मना मत कीजिएगा!' उनके स्वर में मनुहार था.

दरअसल, मैं इस बारे में पत्नी से सलाह कर 'हां' या 'न' करना चाहता था. अभी वे किचन में थीं... हम लोगों के लिए चाय बना रही थीं...

पांच-छः मिनट घर-परिवार के बारे में बातें हुईं! उन्होंने बताया कि एक ही बेटा था और उनकी पत्नी की हालत अभी भी बहुत अच्छी नहीं है! मैंने फिर दुःख प्रकट किया और अपना अपराध स्वीकार किया. मैंने उन्हें बताने की कोशिश की कि कितनी मुश्किल से मैं स्वयं अपराध-बोध से मुक्त हुआ हूं! इस पर उन्होंने कहा, 'भाई साहब! हम लोगों के मन में आपके प्रति कोई मैल नहीं है, बल्कि अस्पताल में अपनी पत्नी के आपके प्रति कुछ भी अनर्गल कहे गये शब्दों के लिए मैं माफ़ी चाहता हूं!... मैं जानता हूं कि घटना में आपकी कोई ग़लती नहीं थी और जो भी हुआ, वह हम लोगों का दुर्भाग्य था. ज़रूर हमने कुछ अक्षम्य अपराध किया होगा, जिसकी सज़ा हमें मिली है! परंतु, आपको बिलकुल अपराधबोध से ग्रसित नहीं होना चाहिए!'

हम लोगों की बातें चल ही रही थीं कि बेटा चाय की ट्रे लेकर आया. मैंने ट्रे पकड़कर मेज़ पर रख दी. मेज़ के नीचे रखे कोस्टर निकालते हुए बेटे ने टीचर की ओर देखते हुए कहा, 'सर! मैं आपके साथ ज़रूर चलूंगा!'

परदे की आड़ में उसने शायद हम लोगों की बातें सुन ली थीं... अचानक मेरे मोबाइल का 'मीडिया टोन' बजा. फ़ेसबुक पर निर्मल की कविता थी. शीर्षक था, 'मैं आदमी बनने की प्रक्रिया में हूं!'

दोनों को साथ-साथ जाते हुए मैं उन्हें देर तक देखता रहा... पत्नी अभी भी किचन में थीं.

३/२९ विकास नगर,
लखनऊ २२६००२.
मो. :८००९६-६००९६

कहानी

क़बरखुदा

डॉ. मोहसिन ख़ान

आज़ादी के पहले यह शहर एक मुस्लिम नवाबी रियासत का अंग था, उसके अपने क़ानून और अपनी सीमाएं थीं. जब देश आज़ाद हुआ और विलय की नीतियां लागू की गयीं, तो उस रियासत को भी विलय के हवाले कर दिया गया, लेकिन शहर की जो तहज़ीब थी वो न बदली. कई सालों तक नवाबी ठसक शहर के कई हिस्सों में ज़िंदा रही और वहां की जनता की प्रवृत्तियों में भी शामिल रही, लोग उसी चाल से कई सालों तक अपने को चलाते रहे. विलय के समय में जो नवाब अपनी रियासत को विलय की भेंट चढ़ा चुके थे, वे एक देश-भक्ति का अभिमान लेकर असमय ही इंतकाल फ़रमा गये और पीछे छोड़ गये. अपनी बिगड़ैल, नामाकूल और कमज़र्फ़ संतानों की पीढ़ियों को. नवाब ने अपने बेहतर समय में कई शादियां कीं और उससे कई संतानें हुईं, आख़िरी प्रामाणिक नवाब की मृत्यु के बाद सारे वारिस बची-खुची जायदाद पर अपना-अपना हक़ जताकर एक-दूसरे के दुश्मन हो गये. जिसके हिस्से में जो आया वो उसी को अपना हक़ मानकर दबोचता रहा और हड़प करता रहा. अपने जीवन यापन के लिए सबको पर्याप्त संपत्ति प्राप्त हो गयी और हड़प करने के लिए संपत्ति समाप्त हो गयी, तो अंततः चालबाज़ियों की शतरंज की बिसात समाप्त हुई, वह खेल भी समाप्त हुआ.

समय अपनी चाल से चलता रहा, नवाबों की पीढ़ियां अपने ही कर्मों से बर्बाद होती गयीं. अपनी जायदाद को बेच-बेचकर अपने शौक़ पूरी करती रहीं, अपना पेट भरती रहीं और एक समय ऐसा आया कि नवाब की बहुत संतानें या तो बेरोज़गार हो गयीं या आवारागर्दी करती रहीं या कोई किसी बनिये की दुकान पर नौकर हो गया और बंधी-बंधायी तनख़्वाह पाता रहा. उसी में उनकी शादियां हो गयीं और फिर उनके भी बच्चे हो गये और उनके वारिस होते हुए भी लावारिस की तरह जीवन जीते रहे, बस नाम के नवाब बने रहे. समय की मांग और जनसंख्या के दबाव के कारण शहर में नयी बसाहट होती रही, धीरे-धीरे शहर फैलता गया. शहर में भी रियासती शहर होने के अवशेष मौजूद हैं. शहर पनाह की मोटी-मोटी दीवारें, कई दरवाज़े, अस्तबल, मक़बरे, छोटी हवेलियां, छोटी गढ़ियां, इमारतें, मोहल्लों के नाम इत्यादि से अब भी पता चलता है कि यह एक रियासत थी और ये उसके सबूत हैं. शहर के एक तिहाई हिस्से में एक बड़ा नाला बहता है, जिसे शहर के सभी लोग बांडाखाल नाम से पुकारते हैं, जो कि दूर किसी ऊंची जगह से पुराने समय से बहता हुआ वर्षों से बारिश के मौसम में लबरेज़ होकर बहता रहा है. जब बारिश नहीं होती है तब सूख जाता है, लेकिन शहर का गंदा पानी उसको ज़िंदा बनाये रखता है, एक पतले से काले पानी में तब्दील होकर एक बदबू छोड़ता हुआ दिन-रात बहता है और कई किलोमीटर का सफ़र तय करके वह एक बड़ी नदी में मिल जाता है. इस नाले ने शहर को दो भागों में बांट रखा है, जब बारिश बहुत होती है, तो यह नाला पीली मिट्टी के कारण चाय का रंग लिये उफ़ान पर आता है, फिर कोई भी इस पार से उस पार नहीं जा सकता. जो एक रपट (नीची ढलान का पुल) उस पर बनायी गयी है, उस पर पानी आ जाता है, लेकिन एक बड़ा पुल है जिसने शहर के दोनों हिस्सों को आपस में जोड़े रखा है, उस पर कभी पानी नहीं आता क्योंकि वह ऊंचा बना हुआ है. उस शहर के नाले पर शहर के बाहरी भाग में दो पुल और बने हैं, एक पुल ट्रेन के लिए है और एक

हाइवे पर है. नाले के किनारे-किनारे कई खेत व गांव बसे हैं, शहर में भी उस नाले के किनारे मोहल्ले बसे हैं और कई घर बने हैं. शहर में एक मोहल्ला कसाइयों का मोहल्ला है, जिसके पीछे से यह नाला बहकर जाता है. सड़क पर गोश्त की दुकानें हैं, कोई कसाई दुकान लगाकर गोश्त बेच रहा है, तो कोई अपने ही घर के पहले कमरे में गोश्त बेच रहा है. कोई लाइसेंसशुदा है, तो बिना लाइसेंस के ही गोश्त बेच रहा है. गोश्त की बिसांदी दमघोटू बदबू दुकानों और घरों से एक साथ उठती है, जिससे पूरा मोहल्ला बदबू में जकड़ा हुआ है. बदबू ऐसी जैसे कि किसी जानवर के मुंह में आपने अपना सिर डाल दिया हो. ख़ून के हज़ारों छींटे उनके घरों, दुकानों की दीवारों और फ़र्श पर गिर-गिरकर काले और कत्थई रंग में बदल गये. हर समय वहां मक्खियां भिनभिनाती रहती हैं, सड़क से गुज़रो तो मक्खियों का एक झुंड आपके साथ, आपके पास से उड़ेगा, चारों तरफ़ गंदगी ही गंदगी. सड़कों और गलियों में कुत्तों की टोलियां फिरती रहती हैं, जो गोश्त खाने के लिए हमेशा आपसी तनातनी में गुर्राते रहते हैं. ये ही कुत्ते सुबह ज़िबा होते जानवर के आसपास मंडराते रहते हैं, वहां से थोड़ा ख़ून चाटते हैं. वहां जो मिलता है उसे खा चुकने के बाद गलियों और सड़कों पर फिरते रहते हैं या सो जाते हैं. आसमान में निग़ाह डालो तो गिद्ध और चीलें मंडराते रहते हैं. कव्वे घरों, दुकानों की मुंडेर पर गोश्त और छिछड़ों के लिए ताक लगाये बैठे रहते हैं. वहां से गुज़रते हुए हमेशा सरेआम बच्चों, आदमियों और औरतों के मुंह से मां-बहन की गालियां सुन सकते हैं. कभी-कभी तो घमासान लड़ाइयों के दंगल भी देखने को मिल जाते हैं, या तो औरतें पानी के लिए झगड़ रही होती हैं या आदमी एक-दूसरे के ग्राहकों को छीने जाने पर लड़ रहे होते हैं. कसाई मोहल्ले के बच्चे या तो पूरे नंगे सड़क पर भागते रहते हैं या अधनंगे, जिन्होंने कभी स्कूल और मदरसों का मुंह तक नहीं देखा. सभी बच्चे सड़क पर या किनारे बैठकर हगते रहते हैं, उनकी मां अपने घरों के सामने की नालियों में उनका पाख़ाना धुला देती हैं. अपने नित्य कार्यों के लिए औरतें और आदमी सुबह के अंधेरे या शाम को अंधेरे के बाद पीछे नाले में हो आते हैं. कसाइयों के घरों के पीछे नाले का खुला भाग है, जहां वे सुबह पाड़ा, भैंस या भैंस का बच्चा पछाड़कर ज़िबा करते हैं और फिर उनके बच्चे सहित सभी गोश्त की कटाई करते हैं, फेफड़े, पाए,

जन्म : भरूच – (गुजरात)
पीएच. डी.,

: प्रकाशन :

५० से अधिक शोध-पत्र एवं आलेख राष्ट्रीय स्तर की पत्र-पत्रिकाओं (समकालीन भारतीय साहित्य, पंचशील शोध समीक्षा, समन्वय पूर्वोत्तर, वीणा, दस्तावेज़, हिंदी अनुशीलन, सम्मेलन पत्रिका, नागरी संगम, अनभै, भाषा, अनुवाद इत्यादि) में प्रकाशित. उपन्यास- 'त्रितय' प्रकाशित शोध-पत्र, आलेख, कहानी, कविताएं एवं ग़ज़लें. ग़ज़ल संग्रह- 'सैलाब' कथाक्रम में पहली कहानी प्रकाशित, फिर कुछ और कहानियां प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में प्रकाशित. वर्तमान में कहानी ग़ज़ल, कविता लेखन में सक्रिय. प्रकाशित पुस्तकें –पुस्तक –'प्रगतिवादी समीक्षक और डॉ. रामविलास शर्मा'. पुस्तक – 'दिनकर का कुरुक्षेत्र और मानवतावाद'. पुस्तक (सह-सम्पादक) – 'देवनागरी विमर्श'. राष्ट्रीय, अंतर्राष्ट्रीय शोध संगोष्ठी (सेमिनार) में सहभागिता – ५० से अधिक राष्ट्रीय, अंतरराष्ट्रीय स्तर की शोध संगोष्ठियों में सक्रिय सहभागिता।

: संप्रति :

स्नातकोत्तर हिंदी विभागाध्यक्ष एवं शोध निर्देशक
जे. एस. एम. महाविद्यालय, अलीबाग, जिला – रायगढ़ ,
पिन – ४०२ २०१

सिरी सब उठाकर घर ले आते हैं और फिर सफ़ाई करके दुकान और घरों में टांग देते हैं. रोज़ सुबह से ही शहर के लोग बड़े का गोश्त लेने के लिए आने लगते हैं, ग्राहकों में केवल मुसलमान नहीं होते बल्कि निम्न जाति के हिंदू, हरिजन, भील, पारदी, मज़दूर और दूर के गांवों के लोग भी शामिल होते हैं. जैसे ही कोई नया ग्राहक कसाई देखते हैं एकदम चील की तरह झपट्टा मारते हैं, या तो उसे बहला-फुसलाकर अपना ग्राहक बना लेते हैं या दबाव डालकर उसे गोश्त थमा देते हैं. कसाइयों के मोहल्ले से ही लगा हुआ मेवातियों का मोहल्ला है, जो कसाइयों से थोड़े ठीक हैं, चाहे आर्थिक स्तर हो, चाहे सामाजिक, चाहे जातिगत.

मेवाती जानवरों के व्यापारी हैं, कुछ हमाली करते हैं, कुछ बीड़ियां बनाते हैं, कुछ इतने बिगड़े हुए हैं कि चोरियां करते हैं. कसाइयों और मेवातियों का बोलने का एक अलग ही लहजा है, जिससे पकड़ में आ जाते हैं कि यह उस मोहल्ले के हैं.

कसाइयों के मोहल्ले के पीछे जो नाला है, उसके पार एक बड़ा क़ब्रिस्तान है. ये क़ब्रिस्तान बहुत पुराना रियासती वक़्त का ही है, जहां अब तक हज़ारों को दफ़न किया जा चुका है. शहर की आबादी के कारण अलग-अलग जगहों पर और भी क़ब्रिस्तानों का निर्माण हुआ, लेकिन ये बाक़ी क़ब्रिस्तानों से बड़ा क़ब्रिस्तान है. नाले के उस तरफ़ कई क़बरें हैं. क़ब्रिस्तान की बड़ी सीमा में कई छोटे-बड़े पेड़ उगे हुए हैं, झाड़ियां भी बहुत हैं. गवारपाटा जगह-जगह उगा हुआ है. क़ब्रिस्तान की जगह ऊबड़-खाबड़ है, पूरा क़ब्रिस्तान इसी कारण एक बड़ी क़बर के आकार का दिखायी देता है. कसाइयों और मेवातियों के मोहल्ले में साझा एक बड़ी मस्जिद है, जिसे मोहल्ले ने चंदा देकर बनाया है और वहां एक मौलाना को भी नियुक्त किया है, जो पांचों वक़्त की नमाज़ पढ़ाता है. इस क़ब्रिस्तान की देखरेख के लिए एक कमेटी बनी हुई है. जैसा भी, जो भी निर्णय लेना होता है, तो सारे सदस्य मस्जिद में बैठकर निर्णय लेते हैं. क़ब्रिस्तान के लिए एक आदमी को हड़वाई (हड़वाई : क़ब्रिस्तान की देखरेख और क़बर खोदने वाला नियमित व्यक्ति का पेशा) दे रखी है, जिसका नाम नाहरू है. नाहरू की टप्परी भी नाले के किनारे सड़क पर बनी हुई है, बाहर और भीतर बिना प्लास्टर का ईंट-पीली मिट्टी की चार दीवारों का केवल एक ही कमरा है. एक बदरंग दो पटवाला दरवाज़ा, छत के तौर पर ज़ंगज़दा टीन के पतरे डले हुए हैं. रात को एक साठ वाट का बल्ब उसमें टिमटिमाता रहता है, बिजली का कनेक्शन मस्जिद से ख़ैरात में मिला हुआ है. एक रेडियो उसकी टप्परी में अक्सर बजता रहता है. ये टप्परी नाहरू की निजी संपत्ति नहीं, बल्कि मस्जिद की तरफ़ से उसे रहने की सुविधा मुफ़्त में दी हुई है. नाहरू ने अपने जीवन के अब तक के सारे बरस इसी कमरे में बिताये हैं. बचपन से वह इसी कमरे में रह रहा है. सारे मौसमों की मार को उसने इसी टप्परी में सहा है. गर्मी में रात को बाहर सोता है और सर्दी, बारिश में अंदर. नाहरू का बाप पुत्तन उसका वास्तविक बाप न था, बल्कि कई सालों तक पुत्तन की कोई संतान न हुई, तो पुत्तन ने अपनी दूसरे नंबर की छोटी बहन के छठे नंबर के बच्चे को गोद ले लिया था, जिसका नाम उसने नाहरू रखा. उस समय नाहरू की उम्र डेढ़ साल की थी और पुत्तन चालीस से अधिक पार कर गया था. पुत्तन की बीवी जमीला पेट की बीमारी से बिना इलाज के ही मर गयी थी, तब नाहरू की उम्र तेरह-चौदह साल की रही होगी. फिर पुत्तन ने अकेले ही नाहरू की परवरिश की. पुत्तन का ख़ानदान क़बर खोदने वालों का ख़ानदान था, जो कि रियासती समय से क़बर खोदने का काम करता रहा था. विरासत के तौर पर नाहरू को यह काम उसके बाप की तरफ़ से मिला. पुत्तन सफ़ेद कुर्ता-पाज़ामा पहनता था और सिर पर सफ़ेद टोपी लगाये रखता था. अपनी जवानी पार करने के बाद उसने दाढ़ी बढ़ा ली थी. पुत्तन मोहल्ले में सबसे बड़े ही तहज़ीब से पेश आने वाला एक शख़्स था और सदा सबको सलामती, ख़ैरियत की दुआ देता रहता था. मोहल्ले में सबसे दुआ-सलाम होती रहती और बड़े सब्र से काम लेने वाला उसका व्यक्तित्व था. यही सब ख़ूबियां नाहरू में भी उतर आयी थीं. पुत्तन का रंग गेहुंआ था, लेकिन नाहरू का रंग कालेपन पर था. वह अपने सगे बाप पर गया था, पुत्तन से कहीं बलिष्ठ नाहरू का बदन था. अपने बाप के नाक-नक़्श पाये थे उसने. आंखें बड़ी और भवें मोटी काली, बाल थोड़े घुंघराले, होंठ मोटे, चेहरा लंबा. क़द में पुत्तन से ऊंचा और गठीले बदन वाला. बचपन से ही अपने बाप पुत्तन के साथ नाहरू क़ब्रें खोदने जाता रहा और खेल ही खेल में क़ब्र खोदने की सारी विशेषताओं को अनजाने में ही सीखता गया. अपने बचपन में नाहरू कभी क़ब्र से गारा फेंकता, कभी क़ब्र पर गारा चढ़ाता, तो कभी आसपास का गारा हटाते हुए कुदाल से क़ब्र भी थोड़ी-बहुत खोद देता. इसी वजह से उसके बचपन के सारे परिश्रम ने उसके बदन को गठीला और सुडौल बनाना शुरू कर दिया था. पुत्तन चूंकि ज़हीन और एक अलग मिज़ाज का व्यक्ति था, उसने समय-समय पर नाहरू को मदरसे भेजा जिससे वह अरबी और उर्दू पढ़ने का अभ्यस्त हो गया था. समय पर उसने क़ुरान शरीफ़ भी ख़त्म कर लिया था. पुत्तन नाहरू की इस इस स्थिति से ख़ुश था और उसे संतोष था कि जीवन में उसने एक बड़ा महत्वपूर्ण काम किया जो कि उसे करना ज़रूरी था. अब पुत्तन का एक और काम शेष रह गया था, एक अच्छी-सी बहू के वह सपने देखने लगा था. नाहरू

उन्नीस साल का होने आया था, तब ही पुत्तन ने नाहरू के निक़ाह की फ़िक्र की और जल्द ही अपनी ही जात-बिरादारी में से एक अच्छी लड़की ढूंढ़ लाया और नाहरू का निक़ाह हो गया. वे दिन नाहरू के सुनहरे दिन थे, अपनी शबाना को जब उसने पहली बार देखा तो ज़रा घबराया सा था. कभी किसी औरत से वह एकांत में नहीं मिला था और न इतने निकट किसी भी औरत के पास गया था. नाहरू ने एक अजीब-सा संतोष अपने भीतर पाया था कि उसका कोई ख़ास अपना अब उसकी ज़िंदगी में शामिल हो गया है. जाने क्यों उसे अपनी ज़िंदगी बंधी हुई सी लगी जो कहीं भटक सी रही थी, बिखर सी रही थी. उसे इस बंधन में बहुत खुशी महसूस हो रही थी. शबाना ने उसे जीवन का सौंदर्य दिया और बहुत सा प्यार दिया, तो वो शबाना के दामन से बंध गया.

शादी के बाद से ही नाहरू अधिक समय घर पर बिताने लगा था. अब उसका मन घर में लगने लगा था, शादी के पहले वह अपने दोस्तों में व्यस्त रहता था. शबाना जो साधारण नाक-नक़्श वाली एक घरेलू लड़की थी, रंग खुला हुआ, चेहरा गोल, छोटी आंखें, पतले होंठ और ऊंचाई कम थी. वह भी अपनी नयी दुनिया में जल्द ही रम गयी. नाहरू का काम क़ब्र खोदने का था, क़ब्र तो वह पुत्तन के साथ पंद्रह साल की उम्र से बराबर खोदने लगा था, कभी-कभी एक ही रोज़ में दो जनाज़े क़ब्रिस्तान में दाख़िल होते, दो मौतें एक ही दिन में होतीं, तो एक की क़ब्र पुत्तन खोदता और दूसरे की नाहरू. नाहरू हमेशा पुत्तन से अधिक साफ़-सुथरी क़ब्र खोदता, एकदम चौकोर. क़ब्र की दीवारें ऐसी छील देता जैसे कोई बॉक्स ज़मीन में उतार दिया हो. क़ब्र खोदते हुए पिछले मुर्दे के जो अवशेष मिलते उसे बड़े ही एहतराम के साथ रखता और मिट्टी में दबा देता. उसे इस काम में मज़ा भी आने लगा था, यही उसकी रोज़ी-रोटी का एक मात्र ज़रिया था. उसने अपने इस पेशे में अपना हुनर भी जोड़ दिया था, सब उसकी खोदी हुई क़ब्र को देखते थे कि बड़े ही करीने से एक जैसी क़ब्र खुदी हुई है. क़ब्र लोगों के मानस में भय उत्पन्न करती है, क़ब्र की कौन तारीफ़ करना चाहेगा, लेकिन उसके इस काम के लिए किसी-किसी से सराहना मिल ही जाती थी. अपने बाप से मुर्दे को गुस्ल कराने के तरीक़े भी वह सीख गया था. पुत्तन ने भी अपने सारे गुर नाहरू को सिखा दिये थे. पुत्तन की उम्र अधिक हो रही थी उसने धीरे-धीरे क़ब्र खोदने का काम कम कर दिया और बस एक पोते की चाहत में अपने दिन अधिकतर टप्परी से बाहर रहकर गुज़ारने लगा. अब उसने टप्परी अपने बेटे और बहू के हवाले कर दी, सिर्फ़ खाना खाने के वक़्त वो दो बार भीतर जाता. शेष समय वह इधर-उधर गुज़ार देता या मस्जिद के कामों में सफ़ाई और पानी की व्यवस्था में लगा रहता, वहीं नमाज़ भी अदा करता रहता. रात होती तो टप्परी के बाहर रखे ठेले पर आकर सो जाता, ठेले पर उसका बिस्तर रखा हुआ मिलता. ये एक अनबोली व्यवस्था थी, जिसे पुत्तन, नाहरू और उसकी बीवी शबाना ने निर्मित की थी. डेढ़ साल के अंदर ही पुत्तन को अपने पोते का मुंह देखने को मिल गया, अपने पोते का नाम पुत्तन ने साबिर रखा. बस फिर पुत्तन को क्या चाहिए था, ज़माने भर की ख़ुशियां उसे मिल गयीं थीं, लेकिन पुत्तन इन ख़ुशियों का भागीदार ज़्यादा दिनों तक, ज़्यादा वर्षों तक न बन सका एक रात जब ठेले पर सोया तो सुबह मुर्दा पाया गया. शबाना ने अलस्सुबह नित्य क्रिया को जाते जिस अवस्था में सड़क के खंबे की ट्यूबलाइट में पुत्तन को देखा था, सुबह सात बजे तक पुत्तन उसी अवस्था में पड़ा हुआ था. नाहरू भी सुबह नित्य क्रिया से निबटकर रोज़ की तरह आकर फिर से सो गया था, उसने पुत्तन की तरफ़ अलस्सुबह न देखा था. हल्की गर्मियों के दिन चल रहे थे. पुत्तन की बहू शबाना को फ़िक्र हुई, तो उसने नाहरू को जगाकर कहा — 'देखो तो आज अब्बा अभी तक सोकर नहीं उठे, रोज़ तो अज़ान के पहले उठकर मस्जिद चले जाते हैं.' नाहरू को बात करंट की तरह लगी, बात सुनते के साथ ही चादर फेंकी, थोड़ा बदहवास होता हुआ अपने बाप की तरफ़ लपका. जाकर देखा, पुत्तन बायें करवट लिये था, नाहरू ने धीरे से आवाज़ दी — 'अब्बा.' कोई प्रतिक्रिया न होने पर दो-तीन बार और पुकारा. जब कोई जवाब न आया तो पुत्तन का लुजलुजा कांधा पकड़ा और जगाया, तो भी कोई प्रतिक्रिया न हुई. नाहरू का दिल जो पहले से तेज़ गति में धड़क रहा था अब और भी तेज़ हो गया, साथ ही पूरा बदन कांप गया. ज़रा ज़ोर से पुत्तन का बदन झंझोड़ा तो उसे पुत्तन के मुर्दे हो जाने का आभास हुआ. उसके अनुभवी हाथों ने कई मुर्दों के बदन को ठीक से छू रखा था, हर उम्र के मुर्दे उसके हाथों के गुस्ल को पा चुके थे. कितनों को उसने क़ब्र में उतारा था. कई मुर्दे वो अपने अब तक के जीवन में देख चुका था,

लेकिन अपने बाप को जब मरा देखा, तो उसकी रूह कांप गयी, जाने कैसा उसे अनुभव हुआ, जो आज तक किसी के मर जाने पर उसे न हुआ था. जाने कितनी मौतें उसने देखी थीं, लेकिन कभी किसी मौत पर इतना गंभीर न हुआ था. जैसा दुख उसे पुत्तन की मौत से मिला वैसा दुख उसने पहले किसी मुर्दे को देखकर नहीं किया. नाहरू ने अपनी उंगलियां पुत्तन की नाक पर लगायीं तो पाया कि पुत्तन की सांसें रुक गयी हैं, फिर भी उसने नब्ज़ टटोली. टटोलने पर पाया कि वह भी रुकी हुई है. बदहवास तो था ही, उसने फ़ौरन घर की तरफ़ ठेले को धकेला जिसमें अब पुत्तन मुर्दा था. अपनी बीवी को बताया कि अब्बा नहीं रहे. ये सुनकर शबाना के होश उड़ गये, वो रोये या दहाड़े मारे उसे समझ नहीं आया, अभी उसकी उम्र भी कम ही थी अठारह साल की उम्र में मां तो बन गयी थी, लेकिन दुनियादारी अभी उसे न आयी थी. शबाना के सामने मौत का यह पहला मंज़र था, इसलिए वह घबराकर सहम गयी. उससे न रोते बना, न ही उसे कुछ सुझायी दिया. बस अपने पति को देखती रही कि अब क्या करना होगा! नाहरू का मुंह अजीब-सा हो गया था, ठेले पर से पुत्तन के अकड़े हुए बदन को उसने टप्परी के भीतर प्रवेश दिलाया. शबाना को चटाई बिछाने का कहा और पुत्तन को उसपर लिटा दिया. नाहरू ने शबाना से कहा- 'घबराना मत, मैं अभी मस्जिद में और मोहल्ले में ख़बर करके आता हूं.' उसने बाहर नाली पर रखे मटके में गिलास डाला और फटाफट मुंह धोया. नाहरू बदहवास आड़े-टेड़े क़दमों से दौड़ता हुआ मोहल्ले में और मस्जिद में पुत्तन के इंतिक़ल की ख़बर दे आया. इतनी देर शबाना सहमी हुई, मुंह पर दुपट्टा दबाए, घबराई हुई बिना चाय पिये कौने में बैठे हुए पुत्तन की लाश को देखती रही, उसका छोटा दो साल का बच्चा बेख़बर बिरतर पर फ़र्श पर सोया पड़ा था. जैसे ही सबको ख़बर मिली, तो पुत्तन की मय्यत के लिए लोग धीरे-धीरे नाहरू की टप्परी के पास इकट्ठे होने लगे. कुछ औरतें शबाना को धैर्य बंधाने के लिए टप्परी में आ गयीं. जब शबाना की मां उसके पास आयी, तो शबाना की रुकी हुई रुलाई फूट पड़ी. वह बेसुध होकर ज़ोरों से दहाड़े मारकर रोने लगी, उसकी मां उसे चुप कराती रही. थोड़ी देर ज़ोरों से रोने के बाद उसका रोना सिसकियों और हिचकियों में बदल गया. इधर नाहरू को कई इंतज़ाम करने थे, उसने किसी और क़बर खोदने वाले को नहीं बुलाया, जबकि ग़म के वक़्त में किसी और क़बर खोदने वाले को उसी पेशे के लोग बुला लेते हैं. नाहरू ने ऐसा न किया, कुछ ज़िम्मेदार लोगों को बताकर वह सीधा क़ब्रिस्तान पहुंचा और एक साफ़-सुथरी जगह को देखकर क़बर खोदने लगा. वह चाहता था कि अपने बाप को श्रद्धांजलि स्वरूप अपने हाथों से खुदी हुई क़ब्र में दफ़नाये. जल्दी-जल्दी लेकिन करीने के साथ उसने आंखों में आंसू और दिल में भारी रंज लिये क़ब्र खोदी. क़ब्र खोदते हुए पुत्तन के साथ बिताये दिनों की स्मृतियां उसके ज़हन में आती-जाती रहीं. जल्द ही क़ब्र खोदने के काम को निबटाकर अपनी टप्परी की तरफ़ रवाना हुआ. तब तक मोहल्ले के और लोग भी आ चुके थे. कुछ ज़ईफ़ और समझदार लोगों ने नाहरू के साथ तय किया कि

लघुकथा

बुलावा

✍ ओमप्रकाश बजाज

दादी अम्मा बैठी कुछ बुदबुदा रही थीं. शायद जाप कर रही थीं. काम वाली बाई ने बरतन धोते-धोते पूछा, "अम्मा, क्या बोल रही हो?"

दादी अम्मा ने बड़ी बेज़ारी से कहा, "अरी, बोलना क्या है. भगवान से कह रही हूं कि बहुत हो गया. अब तो उठा लें."

काम वाली बाई तपाक से बोली, "अम्मा, भगवान नहीं उठायेगा तुम्हें. अरे, उसे क्या पागल कुत्ते ने काटा है जो तुम्हें उठा ले और फिर बैठा तुम्हारे घुटनों की मालिश करे. सिर दबाये. रात दिन तुम्हारा कांखना कराहना सुने.

अरे, वह भी उन्हें उठाता है जो वहां जा कर उसकी कुछ मदद करें. उसका हाथ बंटायें.

कैसी पते की बात कह गयी वह अनपढ़ काम वाली बाई !

पोस्ट बाक्स नं : ५९५, जी. पी. ओ.,
इंदौर (म. प्र.)-४५२००१.
मो.: ९८२६४९६९७५.
ई-मेल – opbajaj@gmail.com

ज़ोहर की नमाज़ के बाद पुत्तन को दफ़नाया जायेगा. ज़ोहर का समय दो बजे दिन का था, पुत्तन के गुस्ल की व्यवस्था वहीं पास की खाली जगह, पेड़ के नीचे चादर तानकर की गयी. पुत्तन के गुस्ल के लिए नाहरू के साथ और भी हाथ लगे, सभी ने पुत्तन का गुस्ल कराया. मस्जिद से गहवारा (गहवारा : वह ताबूत जिसमें मुस्लिम व्यक्ति के शव को ले जाया जाता है.) मंगाया गया. हार, फूलों को जनाज़े पर चढ़ाया गया. जनाज़ा मस्जिद में ले जाया गया. वहां जनाज़े की नमाज़ अदा हुई, काफ़ी तादाद में मय्यत में लोग शामिल हुए. ये इस बात का प्रमाण था कि पुत्तन का व्यवहार पूरे मोहल्ले में सबसे बेहतर, शांत और शालीन था. पुत्तन को नाहरू ने अपने हाथों से क़ब्र में उतारा. पूरे रीति-रिवाज़ों से पुत्तन को दफ़नाया, क़ब्र पर ऊंचे तक मिट्टी चढ़ायी, हार, फूल डाले गये, अगरबत्तियां जलाकर लगायी गयीं. फिर सबने फ़ातेहा पढ़ी. नाहरू का मन जाने कैसा हो रहा था, किसी से काम की बात के अलावा कोई और बात उससे कहते नहीं बन रही थी. न जाने क्यों उसे अपने क़ब्र खोदने वाले काम से नफ़रत-सी जाग गयी, क़ब्रिस्तान महक उठा. कल तक वो जिसे अपना हुनर और पेशा मानता रहा, अचानक उसे लगा कि यह कैसा काम है, जो अपनों के लिए उसे करना पड़ा. लेकिन क़ब्र खोदना उसकी मज़बूरी के साथ जीवन यापन का साधन था, वह इसे कैसे छोड़ सकता था!

नाहरू पर समय ने पहले ही बहुत ज़िम्मेदारियां डाल रखी थीं, पुत्तन के इंतिकाल से अब परिवार का पूरा भार उसके कंधों पर आ गया. पुत्तन ज़िंदा था तो उसे कभी बाज़ार से सौदा लाना नहीं पड़ा, सब पुत्तन ही देख लेता था. नाहरू को अब ये सब काम करने का ज़िम्मा स्वयं ही उठाना पड़ा. क़ब्र खोदने के अलावा वह कई छोटे-मोटे काम कर लेता था, साथ ही बीड़ियां भी बना लेता था. रेडियो सुनने का शौक़ जो पुत्तन का था, उसमें उतर आया था. बीड़ियां बनाते हुए वह अक्सर रेडियो सुनकर अपना मनोरंजन किया करता था. ज़माना धीरे-धीरे बदलने लगा था, नाहरू के सामने पहले टेलीविज़न का दौर आया, फिर मोबाइल का दौर आया. इसी दौर के साथ साबिर बड़ा होने लगा और नाहरू अधेड़ होने लगा था, लेकिन अब मोहल्ला पहले जैसा तहज़ीब-तमीज़ वाला न बचा था. नयी पौध मोहल्ले में पनप गयी, जो अपनी आगे की पीढ़ी से अलग और गैरज़िम्मेदार थी. नयी पीढ़ी बर्बादी के रास्ते पर थी, मोहल्ले में खुलेआम जुआ चलता और जवान बच्चे सट्टा भी खेलने लगे थे, कोई तो नशाखोरी में डूब गया था. गुंडागर्दी और मारकाट भी अब पहले के मुक़ाबले में ज़्यादा होने लगी थी और इसी कारण मोहल्ले में पुलिस अक्सर आती. जब भी कोई वारदात आसपास घटती तो कुछ गुंडे लड़कों को पुलिस खोज निकालती और थाने पर पूछताछ के लिए ले जाती. नाहरू ने अपने बच्चे की परवरिश ठीक से करना चाही थी लेकिन मोहल्ले की बिगड़ी फ़िज़ा ने साबिर को बचपन से अपनी चपेट में लेना शुरू कर दिया था. नाहरू ने बहुत चाहा कि साबिर स्कूल में पढ़े, लेकिन साबिर इसलामिया स्कूल से भागकर मोहल्ले-मोहल्ले गोटियां खेलता रहा, नये-नये शौक़ उसे समय-समय पर आकर्षित करते रहे. साबिर पांचवी तक भी न पढ़ पाया. मोहल्ले के ग़लत वातावरण ने उस पर ऐसा प्रभाव जमाया कि अपने दादा की विरासत की कोई तहज़ीब वह सीख न पाया. जब नाहरू को साबिर के बिगड़ने के अंदेशा और संकेत नज़र आये तो समय-समय पर उसकी जमके पिटाई की, कभी मोहल्ले के कसाई-मेवाती के बच्चों के साथ गोटियां खेलता दीख जाता, तो वहीं से मारता हुआ घर तक लाता. कई बार की ठुकाइयों से वो ढीठ हो गया और ज़िद्दी भी. अपनी मां की तो वो पत न करता था. नाहरू ने थक-हारकर मान लिया कि साबिर अब न पढ़ पायेगा, उसे मदरसे में भी भेजा लेकिन कोई लाभ न हुआ. उसका पढ़ना जैसे ही छूटा वो बेलगाम हो गया, घर पर तो वह सोने के लिए और खाने के लिए ही आता. नाहरू अपने जीवन को जैसे-तैसे चलाने के लिए बीड़ियां बनाता रहा, क़ब्र खोदता रहा. उसका जीवन आर्थिक अभावों में बीतता रहा. साबिर बड़ा होता गया, वैसे-वैसे वो और अधिक उद्दंड होता हुआ ख़राब रास्तों पर चलता गया. नाहरू उसकी हरकतों से तंग आ चुका था, उसने अपने लड़के से बात करना ही बंद कर दिया था और मान लिया था कि वह बेऔलाद है, उसका कोई नहीं. अब तक साबिर की उम्र बीस साल की हो गयी थी, उसने बीस साल की उम्र में क्या गुल न खिलाये थे. जुआ वो खेलने लगा, सट्टा वो खेलने लगा, शराब वो पीने लगा, देह की गर्मी ठंडी करने के लिए बाछड़ियों (बाछड़ी : देह व्यापार करने वाली एक जाति) के डेरों में वो जाने लगा. उसकी हरकतों से नाहरू को मोहल्ले में नीची गर्दन, नीची निग़ाह करके चलना पड़ा.

नाहरू ने तो मान ही लिया कि अब उसकी कोई संतान नहीं है, जब भी कोई साबिर के विषय में बात करता तो वह साफ़ मना कर देता कि वो अब मेरा कोई नहीं, मैंने उसे उसके हाल पर छोड़ दिया है. मोहल्ले में एक-दो बार के झगड़ों में साबिर पुलिस थाने भी हो आया था, उसकी इस हरकत से उसका मन और भी खुल गया था. अब जमकर आवारागर्दी करने लगा, फ़िल्में देखना, सट्टा लगाना, जुआ खेलना, शराब पीना और बाछड़ियों के डेरों में जाना, बस ये ही उसकी दुनिया थी.

नाहरू अपना जीवन यापन करता रहा, अक्सर उसके बिगड़ैल बेटे की ख़बरें लोग उसे दिया करते थे, तो नाहरू शर्म के मारे ज़मीन में गड़ जाता था. उसने मोहल्ले में जाना ही कम कर दिया, दिन भर टप्परी में बैठा हुआ बीड़ियां बनाता रहता और रेडियो पर गाने सुनता रहता. नाहरू को जब क़ब्र खोदने की ख़बर मिलती वो क़ब्र खोद आता और जो भी क्रिया-कर्म करने होते कर आता. शुरू से मोहल्ले की मेहरबानी नाहरू पर रही, वह भी पुत्तन के व्यवहार के कारण. कहीं शादी या मय्यत के खाने होते थे, तो बुलावा आता ही था, लेकिन खाना बच जाने की स्थिति में उन्हें हमेशा खाना मिलता था, लोग याद से नाहरू के घर खाना भेज दिया करते थे. कभी-कभी कोई ज़कात के नाम पर गेहूं, नये-पुराने कपड़े और पैसे भी दे जाता था. अब नाहरू पहले से ज़्यादा ख़ामोश और अफ़सोसज़दा हो गया था, अब्बा के चले जाने का भीतर गम तो था ही, लेकिन साबिर की आवारागर्दी ने उसे एकदम तोड़कर रख दिया था. नाहरू अब पहले से अधिक कमज़ोर और उखड़ा-उखड़ा सा हो गया था. शबाना बाप-बेटे के मनमुटाव में कुछ न बोलती. उसे पता था कि बोलने पर घर में और तनाव फैलेगा, इसलिए उसने हमेशा के लिए इस समस्या से निजात पाने के लिए मुंह पर ताला लगा लिया. दिन बहुत तेज़ी से गुज़रते गये. टच स्क्रीन वाला ज़माना आ गया. सब कुछ फास्ट हो गया. इधर साबिर की उम्र बढ़ती गयी और नाहरू-शबाना की उम्र घटती जा रही थी. दिन पर दिन साबिर अधिक शराब पीने का आदी हो गया. अब कहीं भी शराब पीकर मोहल्ले की सड़कों और गलियों में पड़ा रहता. मक्खियां उस पर भिनभिनाती रहतीं और मोहल्ले के बच्चे उसे पत्थर भी मारते. शराब पीने के लिए कभी रुपयों की ज़रूरत होती तो वह घर पर रुपयों की तलाशी के लिए तब आता, जब या तो नाहरू क़ब्र खोदने में व्यस्त होता या मोहल्ले में वह उसे नज़र आता. साबिर रुपये टटोलकर अपनी मां से छीनकर ले जाता और सट्टे, जुए, शराब में उड़ा देता.

साबिर अपनी मां पर गया था, चेहरा न ज़्यादा गोल

कविता

भीड़ से अलग

✍ नरेश कुमार 'उदास'

बहुत ज़रुरी है
भीड़ से अलग होना
और अपनी पहचान के लिए
खोल देना बंद मुट्ठियों को ।
यही वक़्त है
सही निर्णय लेने का
भीतर के बुलबुलाते
सच को टटोलने का
सच जो घुट रहा है,
दम तोड़ रहा है
कहीं भीतर ।
यह अजनबी भीड़
मात्र तमाशा है
जो बांटती नहीं दर्द ।
माना, जोखिम भरा काम है
हाथों को उठाना
और हवा का रुख मोड़ देना
बहुत कुछ खोना पड़ता
अपने रास्ते पर
चलने के लिए ।

मकान नं. ५४, गली नं. ३,
लक्ष्मीपुरम, सेक्टर बी-१ (चनौर)
पोस्ट बनतलाब, जिला जम्मू-१८११२३.
ई-मेल – nareshudass111@gmail.com
मो. :- 0191-2595718.

था और न ज़्यादा लंबा, आंखें सामान्य लेकिन रंग गोरा था और क़द दरमियाना. ज़्यादा शराब पीने की वजह से अब वो खोखला–सा दिखायी देने लगा था, हाथ-पैर झूल गये थे. इतने कमज़ोर हो गये थे कि कांपने लगे थे. ठीक से उससे खड़ा भी न हुए जाता था. आंखों में गड्ढे पड़ गये थे, बाल बड़े हुए बिखरे रहते. पूरे कपड़े धूल, मिट्टी में सने रहते, लार, शराब, पानी के धब्बों से कपड़ों का रंग अजीब सा हो जाता. कभी ज़्यादा शराब पीने पर नशे में ही पैंट में पेशाब कर देता. इस कारण वो एक बदबू का गुबार अपने साथ लिये घूमता. होश आने पर घर जाकर अपने साफ़ कपड़े ले आता, क़ब्रिस्तान के पास लगे नल के पानी से नहा लेता, कपड़े बदल लेता और अपने गंदे कपड़े अपनी टप्परी के दरवाज़े पर फेंक आता, जिसे उसकी मां धो सके. कभी-कभी उसके पैर में चप्पल भी न रहती ऐसे ही नंगे पैर रगड़ता रहता. पूरा मोहल्ला उसे शराबी और जुआरी के तौर पर पहचानने लगा था. किसी को उससे हमदर्दी न थी. जब भी ज़्यादा शराब पीकर किसी के घर के सामने पड़ जाता तो लाते, जूते और लकड़ियां पड़तीं, या पानी डालकर उसे वहां से उसे भगा दिया जाता. जब मोहल्ले से ज़्यादा तंग आ जाता तो वहां जाकर पड़ा रहता जहां जानवरों को ज़िबा किया जाता है. वहीं कुत्तों के बीच पड़ा-पड़ा नशा उतार लेता और जब होश आता तो क़ब्रिस्तान के पास वाले नल जो कि हमेशा पानी देता रहता था, नल पर आकार हाथ-मुंह धो लेता. उसे कोई होश-ओ-हवास नहीं रहता. लड़खड़ाता हुआ चंद रुपयों के लिए मोहल्ले के अतिरिक्त दूसरी जगहों पर हाथ फैलाता रहता, जितने पैसे मिल जाते उनसे देसी शराब पी जाता और बचे हुए पैसों का सट्टा खेल जाता. जब सट्टा लग जाता तो हफ़्ते भर की शराब और कवाब का इंतेजाम हो जाता. होश आने पर नहाकर तैयार होकर अकेला ही फिर बाछड़ियों के डेरों में शहर से दूर बस या टेम्पो में बैठकर पहुंच जाता. वो वहां भी शराब ले जाता और ख़ूब पीकर वहीं पड़ा रहता, वहां की नाजायज़ औलादें उसकी जेब से बाक़ी रुपया निकाल लेतीं. जब उसे होश आता तो घर की तरफ़ पैदल ही रवाना हो जाता, क्योंकि जेब में एक पैसा बाक़ी न रहता तो उसे शहर कौन छोड़ता.

दिन ऐसे ही गुज़रते जा रहे थे, नाहरू दिनभर बीड़ियां बनाता रहता, गाने सुनता रहता, लोगों की ख़ैरात पर पलता रहता. क़ब्र ख़ोदने का काम तो उसका निरंतर चल ही रहा था, लेकिन बारिश के दिनों में उसे क़ब्र खोदने में बड़ी ही परेशानियों का सामना करना पड़ता था. ऐसा कोई साथी भी उसके पास न था, जो कि उसके काम में मदद करा सके. शबाना यह काम कर न सकती था, वैसे भी औरतों को क़ब्रिस्तान में जाने की मनाही है. बस जैसे-तैसे बारिश के दिनों में वह गीली मिट्टी में क़ब्र खोद लेता था. कोई ऊंची सी जगह देखकर वह अपना काम करता ताकि क़ब्र में पानी न भरे. पानी से बचाने के लिए वो अपने साथ एक प्लास्टिक का बड़ा सा टुकड़ा ले जाता, उसे रस्सियों से पेड़ों के सहारे बांध देता और उसकी आड़ में बारिश में क़ब्र खोदता. बारिश के ही दिनों में शहर के एक जाने-माने वकील का इंतिकाल हो गया. उस वकील की मौत दिन में चार बजे के लगभग हुई, इतनी गहमा-गहमी रही कि किसी को याद न रहा कि क़ब्र खुदवाने की ख़बर भेजी जाये. जब छह बजे का वक़्त हुआ तो किसी को याद आया कि क़ब्र खोदनेवाले को ख़बर करो कि क़ब्र खोदना है. तुरंत दो लोगों को नाहरू के घर रवाना किया गया. नाहरू उन्हें घर पर न मिला, उसकी बीवी ने बताया कि शायद वो मोहल्ले में मिल जायेंगे. नाहरू की खोज मोहल्ले में जाकर की तो भी न मिल पाया, लेकिन अचानक बाज़ार से जानेवाली सड़क पर नाहरू दिखायी पड़ा, वह बाज़ार से कुछ सामान लेकर घर की तरफ़ लौट रहा था. उसे ख़बर दी गयी कि सलीम वकील साहब का इंतिकाल हुआ है, जल्दी क़ब्र खोदना है, इशां (रात की नमाज़) की नमाज़ के बाद उन्हें दफ़नाया जायेगा. नाहरू बाज़ार से कुछ सामान लेकर आया था, उसे देने के लिए तेज़ क़दमों से वो टप्परी की तरफ़ बढ़ा, शबाना को कह आया — 'क़ब्रिस्तान जा रहा हूं, सलीम वकील साहब का इंतिकाल हुआ है.' नाहरू कुदाली, फावड़ा और तगारी क़ब्रिस्तान में ही रखता था. उसने आसमान में निग़ाह डाली तो दूर कुछ काले-काले बादल थे, अभी बारिश थमी हुई थी, लेकिन उसका अनुभव उसे सचेत कर रहा था कि बारिश ज़ोरों से होने वाली है. जब वह घर से निकला तो अंधेरा घिरना शुरू हो गया था. वह घर से सिर्फ़ टॉर्च लेकर निकल पड़ा. क़ब्रिस्तान में अपने ठिकाने से उसने अपना सारा सामान उठाया, प्लास्टिक का बड़ा टुकड़ा लिया, उसे पेड़ों के सहारे मज़बूती से बांध दिया, ताकि बारिश आने पर उसे कोई दिक्कत न हो. क़ब्र खोदने के लिए उसने ऊंची जगह का ही चुनाव किया था, बारिश का पानी क़ब्र में घुस

कविताएं

चेहरे की तलाश

उग आयी नागफनी

अनुपम्

वह चला गया / मैं दर तक
अतीत में जाकर,
उसका चेहरा तलाशता रहा.

उसमें कुछ झलक तो थी कल की,
स्मृतियों में संभाले, बीते पल की,
एक उम्मीद लिये मैं,
उस झलक के अंदर,
उसका चेहरा तलाशता रहा.

शायद हमारे बीच, वही कल था,
कल का वह रोमांच, आज बोझिल था.
उस कालखंड में,
बार–बार लौटकर,
उसका चेहरा तलाशता रहा.

लगा कि वह है यहीं कहीं पर,
पर आंखों को आया नहीं नज़र,
समय की परतों को,
नज़रों से कुरेद कर,
उसका चेहरा तलाशता रहा.

सहमति क्या?
यहां विमर्श की भी गुंजाइश नहीं,
सत्ता की क्यारी में फिर उग आयी नागफनी.

बोलने की भाषा, हर एक परिभाषा,
गढ़ दी गयीं इसके जो बाहर हैं,
राजद्रोह के बराबर हैं.
खिलाफ़ हुई हरियाली को कांटे चुभोकर,
मुस्कायी नागफनी.

सपनों के लिये आंखें. उड़ानों की पांखें,
सब तय हैं. इसके अलावा कोई कोशिश,
समझी जायेगी बस साजिश,
हदों की चौकसी करते हुए चौकस,
इतरायी नागफनी.

सब लिख दिया, बता दिया समझा दिया,
तय अर्थों के बाहर कोई भी निर्वचन,
करा सकता है निष्कासन
हाथ लिये हथकड़ियां देती रहीं अनुशासन की
दुहायी नागफनी.

जिला जज, राजगढ़, व्यावरा (म. प्र.)-४६५६६१.

आने की आशंका के कारण.

आधी क़ब्र भी न खुद पायी थी कि ज़ोरों की गरज के साथ घनघोर बारिश शुरू हो गयी, टॉर्च उसने पेड़ पर ऐसी टांगी थी कि उसकी रोशनी में वह ठीक से काम कर सके, लेकिन हवा के साथ बारिश होने की वजह से टॉर्च दूसरी दिशा में मुड़ गयी. फिर भी क़ब्र से निकलकर भीगते हुए उसने टॉर्च का मुंह फिर से सेट किया और काम में भिड़ गया.

हल्की बूंदाबांदी में क़रीब ग्यारह बजे जनाज़ा क़ब्रिस्तान में दाख़िल हुआ और मय्यत को क़ब्रिस्तान में रखा, कुछ लोगों के हाथों में टॉर्च, गैस के लैंप थे, हाथों में खुली हुई छतरियां थीं. कोई मोबाइल की रोशनी से काम चला रहा था. कुछ लोगों ने पता किया कि नाहरू ने क़ब्र कहां खोदी है. नाहरू को खोजा गया, नाहरू कहीं नज़र नहीं आया. बारिश हल्की हो गयी थी. इधर-उधर टॉर्च मारकर कुछ लोगों ने क़ब्रिस्तान का मुआयना करना शुरू किया. अचानक किसी की नज़र थोड़ी ऊंचाई पर पड़ी जहां प्लास्टिक बंधा था, प्लास्टिक के तीन कोने तो पेड़ से बंधे थे, लेकिन एक की रस्सी ज़्यादा हवा और बारिश की वजह से छूट गयी थी. गारे का ढेर आसपास था, उस पर से पानी रिसने के कारण कई छोटी लकीरें बन गयी थीं. कुछ लोगों ने खुदी हुई कब्र में देखा. ढूंढने वालों ने पास में जाकर देखना चाहा कि क़ब्र में पानी तो नहीं और दूर टॉर्च की रोशनी डाली कि नाहरू कहां है? टॉर्च की रोशनी जब क़ब्र में डाली तो नाहरू आधी खुदी क़ब्र में बेतरतीब आंखें फाड़े पड़ा था, पानी आधी क़ब्र में भर गया था. जिसने उसे देखा वह ऊपर से लेकर नीचे तक कांप गया. वकील साहब का जनाज़ा फ़ौरन मस्जिद में ले जाया गया और दूसरे क़ब्रिस्तान में उन्हें दफ़नाने के लिए क़ब्र खोदने की ख़बर भिजवाई गयी. क़रीब

तीन घंटे बाद बारिश रुकने के बाद जनाज़ा दूसरे क़ब्रितान ले जाया गया. तुरंत नाहरू की मौत की ख़बर मोहल्ले में सबको लग गयी. मोहल्ले की औरतों को रात को बताया गया कि नाहरू की मौत की ख़बर उसकी बीवी को दो. सारे मर्द-औरतें नाहरू के घर की तरफ़ रात को ही रवाना हुए. जब औरतों ने शबाना के घर की कुंडी खटखटायी तो वह समझी नाहरू आया है. बल्ब जलाकर जैसे ही दरवाज़ा खोला तो सामने कुछ औरतें थीं, साथ ही बाहर नज़र दौड़ायी तो दूर अंधेरे-उजाले में छितराये औरतों-मर्दों की भीड़ दिखायी दी. ऐसा दृश्य उसे भयभीत कर गया, शबाना को जब नाहरू की मौत के बारे में बताया गया, तो बदहवास होकर दहाड़ें मारकर रोने लगी, उसने सबसे पूछा कैसे और क्या हो गया नाहरू को? उसके सवाल का अभी किसी के पास कोई जवाब न था. उसे यक़ीन हुआ कि वह बेवा हो गयी, वह मन में सोचती रही कि ऐसा अचानक कैसे हो सकता है? कहीं वो कोई बुरा और डरावना ख़्वाब तो नहीं देख रही है. उधर कुछ लोग टॉर्च लेकर क़ब्रिस्तान पहुंचे तो नाहरू क़ब्र में बेतरतीब पड़ा हुआ था. ऊपर का बदन खुला था, पीठ क़ब्र की दीवार से टिकी थी. आंखें फटी हुई, मुंह से लार और झाग बाहर आया हुआ था. उसका रंग और भी काला हो गया था. उसका पूरा बदन पानी से गीला हो गया था, जिससे उसके हाथ-पैरों में झुर्रियां पड़ गयी थीं. क़ब्र खोदते वक़्त नाहरू ने कुर्ता उतारकर, तह करके प्लास्टिक की आड़ में पेड़ की दो शाखाओं के बीच खोंस दिया था. पाज़ामा उसके ज़िस्म से चिपक गया था और पाज़ामे की घुटनों से ऊंची मुड़ी हुई मोहरियों में मिट्टी चढ़ गयी थी, बाल गीले हो चुके थे. नाहरू को उसके दोस्तों ने आधी खुदी हुई क़ब्र से बाहर निकाला. किसी ने उसको अस्पताल ले जाने की सलाह दी, तो सीधे ठेले पर रखकर सरकारी अस्पताल ले जाया गया. डॉक्टर ने उसका परीक्षण करके बताया कि नाहरू की मौत बहुत ज़हरीले सांप के काटने से हुई है. ये पक्का हो गया कि नाहरू अब दुनिया में न रहा, फ़ौरन उसकी लाश को उसके घर ले जाया गया. रात का वक़्त था क़रीब एक बजे से ऊपर का समय हो चुका था. ठेले पर से उसकी लाश उतारकर उसके घर में न रखी, बल्कि बाहर ठेले में ही चटाई बिछायी और उस पर रखी, उस वक़्त बारिश थम चुकी थी. इसी बीच किसी औरत ने शबाना को बताया कि सांप के काटने से नाहरू की मौत हुई है. रात को कुछ मर्द और औरतें अपने घर चले गये और कुछ वहीं रुके रहे, जब तक नाहरू और शबाना के रिश्तेदार न आ गये तब तक. सुबह होने का इंतज़ार था, सुबह की रोशनी होना शुरू हुई. सारे परिंदे बोलने लगे, आसमान में कहीं-कहीं बादल थे बाक़ी आसमान साफ़ सुथरा धुला-धुला था. पिछली रात नाहरू के परिवार के लिए क़हर बनकर आयी थी, जिसने शबाना की वर्षों की बसी हुई दुनिया को एक मिनिट में उखाड़कर फेंक दिया. सुबह होने से पहले शबाना के कुछ रिश्तेदार और नाहरू के रिश्तेदार आ चुके थे. केवल न आ पाया तो उसका शराबी, जुआरी बेटा साबिर. जब ज़्यादा उजाला हुआ, तो साबिर को खोजा गया, उसे ख़बर देना थी कि उसके बाप का इंतिकाल हो गया है. मोहल्ले की एक गली के आख़िरी छोर पर नाले के क़रीब वाली एक जगह पर एक टूटे हुए मकान के शेड में साबिर बदबुओं में लिपटा पड़ा हुआ था, उसके मामू ने उसे जगाया और कुछ होश में लाने की कोशिश की लेकिन वो होश में न आया. उसे उसका मामू वहीं छोड़कर वापस चला आया. सुबह दूसरे क़ब्रिस्तान में नाहरू को दफ़नाने के लिए क़ब्र खोदने वाले को ख़बर की गयी, नाहरू का गुस्ल भी वहीं हुआ जहां पुत्तन का गुस्ल किया गया था. गहवारा मंगाया गया, आख़िरी बार मुंह दिखायी की रस्म निभायी जा रही थी. सब मर्दों ने नाहरू का आख़िरी बार चेहरा देखा, नाहरू का चेहरा वैसा ही उखड़ा-उखड़ा लग रहा था, एक अजीब सा खिंचाव उसके चेहरे पर तन गया था. शबाना को भी नाहरू का चेहरा दिखाने के लिए लाया गया, शबाना की मां उसे साथ लेकर आयी. उसको कोई होश न था, उसे समझ नहीं आ रहा था कि उसके साथ हो क्या रहा है. उसने जब नाहरू का चेहरा देखा तो आंखों में आंसू थे, सब कुछ धुंधला और बुरे सपने सा लग रहा था. कुछ समय बाद जब कलमों के साथ मय्यत उठी तो शबाना पछाड़ें मार-मारकर ज़मीन पर अपने आपको पटकती रही, बदहवास होकर गला फाड़कर बिलखती रही और बेतहाशा चिल्लाती रही — 'मत ले जाओ मेरे नाहरू को.' उसके रिश्तेदार उसे क़ाबू में करने की भरसक कोशिश में लगे रहे, लेकिन उसकी ताक़त इतनी थी कि वह हाथों से छूट जाती थी, जैसे हाथों से तड़पती हुई मछली फिसल जाती है, उस तड़प से भी अधिक तड़प शबाना में उस समय मौज़ूद थी. जनाज़ा उठा, एक-एक करके सबने कांधा दिया, लेकिन साबिर का

कांधा जनाज़े को न मिला. एक ख़ामोशी और गहरे रंज के साथ सब मस्जिद की तरफ़ चल पड़े, लेकिन एक चीत्कार नाहरू के घर अब भी गूंज रही थी. ज़ोहर की नमाज़ के बाद उसके जनाज़े की नमाज़ अदा की गयी, जिसमें उसका बेटा साबिर शामिल न था. नाहरू का जनाज़ा दूसरे क़ब्रिस्तान में ले जाया गया, वहां उसे रीति-रिवाज़ों से दफ़ना दिया गया, अपने बेटे से नाहरू को मिट्टी नसीब न हुई. दफ़नाने के बाद साबिर का मामू फिर उसी जगह गया जहां साबिर पड़ा हुआ था. अब वह कुछ होश में था, उसने अपने मामू को देखा तो पहचान गया, ज़्यादा शराब पीने से एक गुनुदगी साबिर के दिमाग़ पर अब भी छायी हुई थी, उसी गुनुदगी में उसने अपने मामू से अपने बाप के मरने की ख़बर सुनी तो थोड़ी देर सुन्न-सा रहा, कुछ बोला नहीं, जाने कहां किस क्षितिज में उसकी नज़रें टंगी रह गयीं. फिर आंखों से आंसू छलछलाकर बाहर उबल पड़े, मामू ने उसे घर ले जाना चाहा लेकिन वह नहीं गया. बस ज़मीन पर लोट गया और रोता रहा, रोने से नाक और लार बाहर आकर गीली नमी वाली जगह में मिलते रहे, फिर उसने अपने शर्ट की आस्तीन से मुंह और नाक पौंछे.

अब शबाना की ज़िंदगी का फ़ैसला होना था. नाहरू के चले जाने से वह इस दुनिया में अकेली रह गयी थी, उसका बेटा होते हुए भी उसका न रहा, उसका होना न होना उसके लिए बराबर था. शबाना का भाई अनवर जो उससे हमदर्दी रखता था. घर उसका भले ही छोटा ही था, लेकिन दिल बड़ा था, शबाना को वह अपने घर ले गया. अगले दिन आकर शबाना के भाई ने टप्परी का सारा सामान खाली कर दिया, जिसमें नाहरू के हाथ की कुछ अधूरी बनी बीड़ियां और उसका वह रेडियो, जो वह सुना करता था शामिल था. रेडियो उस दिन बहुत ज़्यादा ख़ामोश और उदास था. शबाना के भाई ने सारा सामान ठेले में भर लिया, दो तीन चक्कर में उसने सारा सामान अपने यहां पहुंचा दिया. आख़िरी चक्कर में बचा-खुचा सामान ठेले में डाला, दरवाज़े की कुंडी लगायी और हमेशा के लिए उसने ताला लगा दिया. जाते-जाते शबाना के भाई अनवर ने मस्जिद के सदर को चाबी सौंप दी और शुक्रिया अदा करके उन्हें सलाम कर ठेला धका के ले गया. साबिर जब थोड़े होश में आया तो दो दिनों बाद अपनी टप्परी की तरफ़ फेरा मारा. उसके क़दम लड़खड़ा रहे थे, जाकर देखा तो दरवाज़े की कुंडी चढ़ी हुई थी और उस पर ताला लगा हुआ था. वो परेशान होकर निस्सहाय नाली पर ढंकी सिल्लियों पर बैठा रहा. आंखों के आंसू उसके सूख चुके थे, जेब में हाथ डाला तो एक पैसा हाथ न आया, कुछ समझ न आया कि वह क्या करे? थोड़ी देर बैठा रहा और फिर उठकर बाज़ार की तरफ़ चला गया, उसने सोचा था कि बाज़ार में कुछ खाने-पीने को मिल जायेगा. पच्चीस-पचास दुकानों पर हाथ फैलायेगा तो कोई कुछ तो दे ही देगा, अगर पैसे मिले तो शराब का भी इंतेजाम हो जायेगा.

अब साबिर फटेहाल में अक्सर हाथ फैलाता हुआ बाज़ार में मिल जाता है या होटलों के पास रखे डस्टबिन में खाना ढूंढ़ता हुआ मिल जाता है, रात होने पर टप्परी के बाहर फुटपाथ पर आकर शराब पीकर पड़ा रहता है और जाने किस पश्चाताप से खोये हुए अपनेपन को टप्परी की दीवारों, बंद दरवाज़े को देखता हुआ तलाशता रहता है.

२०१, सिद्धांत गृहनिर्माण संस्था,
विद्यानगर, अलीबाग, ज़िला-रायगढ़
(महाराष्ट्र) ४०२२०१
मो. : ९८६०६५७९७०.

लघुकथा

खाटें

सुरेश सौरभ

उनके बाप दादा कभी खाट पर नहीं बैठे थे. वे खाट पर बैठ कर किसानों को न्याय दिलाने की बात कर रहे थे. खाटें मंगवायी गयीं, उस पर बैठ कर नेताजी ने रैली की. तमाम लोग खाटों पर बैठे. रैली समाप्त हुई. नेता जी चले गये. उनके जाते ही सब खाटें ले-ले कर भागने लगे. भागे भूतों को जैसे लंगोटियां मिल रही हों.

तमाम खाटें गरीबों के घर पहुंची मुस्कुरा रही थीं, कम से कम नेताओ से जान छूटी. नेताओं के बैठने पर खाटों का दम घुट रहा था. अब खाट लूटने वाले किसानों-मज़दूरों को खाटें हृदय से धन्यवाद दे रहीं थीं.

आचार्य श्री लक्ष्मण प्रसाद राज
महाविद्यालय, निर्मल नगर, लखीमपुर.
मो. ७३७६२३६०६६.

स्मृति बिंबों में बचपन

✍ राधेलाल बिजघावने

मैं अपना बचपन
स्कूल में ही रख आया
ब्लैक बोर्ड पर लिखे सवालों को हल करता हुआ
भौतिक और रसायन शास्त्र के फॉर्मूलों से माथा-मच्ची करता हुआ.
मेरा बचपन देर तक
खेल मैदान पर हंसता-खेलता
अपनी ही उम्मीदों से हारता-जीतता रहा.
मेरा बचपन स्कूली क़िताबों कॉपियों में
प्रवेश कर उदास निराश हो छिपकर बैठा रहा.
हम उम्र ख़ूबसूरत स्कूली लड़की
स्कूल का प्रॉज़ेक्ट तैयार करने में
मेरी मदद करती हुई,
अपना प्यार चुप चाप मुझे सौंप देती है
और मेरी हमदर्दी जीतकर
मेरी आत्मीय संवेदनाओं में प्रवेश करती है.
मैं अपना बचपन चुपचाप
उस लड़की को सौंप देता हूं
और वह लड़की अपना बचपन मुझे दे देती है
पर न जाने कब हमारे बचपन
भविष्य के अंधेरे में डूब जाते हैं.
हम धीरे-धीरे अपने बचपन को
तलाशते-तलाशते भूल जाते हैं
और हम अपने-अपने रास्ते चले जाते हैं.
बूढ़े दिलों में हम अपने बचपन की याद करते हैं
और फ्यूज़ बल्ब की तरह
बुझकर निराश हताश उदास हो जाते हैं.

ई-८/७३, भरत नगर, शाहपुरा, अरेरा कॉलोनी, भोपाला-४६२०३९
मो.: ९८२६५५११८९

कहानी

कसाईखाना

कल्पना रामानी

विशु के बापू, ज़रा सुनना तो... नानकी ने बान की झोल खाती हुई खटिया पर सोये बेटे विशाल को मैली-सी पुरानी चादर उढ़ाते हुए आवाज़ लगायी.

'हां, कहो क्या बात है?' कोठरी के बाहर ही टाट के परदे की आड़ में नहाते हुए मंगलू ने जवाब दिया.

'आज इन दो बूढ़ी हो चुकी बकरियों और एक बछड़े को कसाईखाने दे आओ... कहां संभालूं इन सबको, बाड़े में जगह कम पड़ने लगी है, हर साल दो से चार हो जाती हैं. इनका पेट भरने के लिए दुधारुओं का पेट काटूं या फिर अपना. ना बाबा ना... यह अब नहीं होता, वैसे भी ये तीनों हमारे किसी काम के नहीं. चार बकरियां और उनके तीन बच्चे बहुत हैं अब! दिन भर विशु की देखभाल फिर घर के काम के साथ दूध दुहने, घरों में देने से लेकर इन सब जानवरों के सारे काम इतना थका देते हैं कि शरीर का पोर-पोर राहत के लिए गिड़गिड़ाने लगता है.'

मां की बात सुनते ही नन्हें विशु के कान खड़े हो गये. चादर हटाकर उठ बैठा और मां से पूछा — 'अम्मा, यह कसाईखाना क्या होता है?'

छः वर्षीय पुत्र की जिज्ञासावश पूछी हुई बात से घबराकर नानकी स्वयं को कोसने लगी कि उसने बेटे की उपस्थिति को नज़रअंदाज़ क्यों किया? कुछ संभलकर बोली — 'बेटा यह एक बाज़ार होता है जहां बकरियां बेचने जाते हैं.'

'लेकिन मां, बकरियां बेचते क्यों हैं? मुझे तो इनके साथ खेलना बहुत अच्छा लगता है.'

'बेटे जब वे हमारे किसी काम की नहीं रहतीं तो बेचना ही पड़ता है. हमारा बाड़ा छोटा है न अधिक हो जाने से उनको परेशानी होती है.'

विशु को पूरी तरह संतुष्टि नहीं हुई फिर भी वह चादर तानकर सोने का उपक्रम करने लगा.

मंगलू नहाकर आ गया था, नानकी से बोला, 'आज काम पर जाने का समय हो चुका है, कल कुछ जल्दी घर से निकलूंगा तो लेता जाऊंगा.'

नानकी जब से ब्याहकर आयी, अपने पति के साथ एक कमरे के कच्चे मकान में, जो कि पति को विरासत में मिला हुआ था, रहती थी. पति का काम शहर की इमारतों की रंगाई-पुताई का था. कुछ समय तक नानकी भी उसी के साथ काम पर जाया करती थी लेकिन गर्भवती होने के बाद उसका काम पर जाना बंद होता गया. घर में रहकर ही अपना समय काटने लगी.

उन दिनों परिवार-नियोजन के लिए प्रचार-अभियान ज़ोरों पर था. गांव के ग़रीब-अनपढ़ लोगों को, जो भगवान की देन मानकर एक के बाद एक बच्चों की कतार लगा देते थे, प्रोत्साहित करने के लिए सरकार ने घोषणा कर रखी थी कि एक या दो बच्चों के बाद नसबंदी करवाने वालों को सरकार की तरफ़ से सहयोग स्वरूप एक मोटी रक़म दी जायेगी. मंगलू ने नसबंदी के बारे में पूरी जानकारी जुटायी और पुरुषों की नसबंदी महिलाओं की अपेक्षा आसान और सुरक्षित जानकर विशु के जन्म के बाद नसबंदी करवा ली.

सरकार से मिले हुए पैसे से पति-पत्नी ने आपसी मशविरा करके अच्छी नस्ल की चार दुधारू बकरियां और एक बकरा ख़रीद लिये. घर के पिछवाड़े काफ़ी ज़मीन खाली थी, वहां उन्होंने बकरियों के लिए बाड़ा भी बना लिया. दुधमुंहे बच्चे के साथ काम पर जाना तो मुमकिन नहीं था अतः नानकी

घर में ही मेहनत से बकरियों की सेवा करने लगी.

इससे विशु को भी घर का शुद्ध दूध मिलने लगा. शेष दूध शहर के धनी घरों में बेचने से आमदनी भी बढ़ने के साथ ही नानकी का समय भी अच्छी तरह कटने लगा धीरे-धीरे उन्होंने घर को पक्का करवा लिया.

छः वर्ष का होने पर विशु स्कूल जाने लगा. वो पढ़ाई में होशियार और मेहनती भी था. हर साल अच्छे अंकों से उत्तीर्ण होता रहा. समय गुज़रता रहा, युवा होते पुत्र को देखकर मंगलू ख़ुशी से फूला न समाता. एक दिन उसने उसे दो बूढ़ी बकरियां बेचने कसाईखाने भेजा, सोचा कि कुछ काम सीख जायेगा तो उसे भी आराम मिलेगा. विशु ने पहली बार कसाईखाना देखा था. वहां का वीभत्स दृश्य और बकरियों की कातर निग़ाहें देखते ही वो सब समझ गया और उल्टे पांव लौट पड़ा. कुछ ही दूर जंगल में बकरियों को छोड़कर वापस घर आ गया. पिता के पूछने पर उसने सब कुछ बता दिया और साफ़ कह दिया कि वो ऐसा काम कभी नहीं करेगा, जिसमें बेकार होते ही निरीह पशुओं को मौत के मुंह में धकेल दिया जाये. पढ़-लिखकर इतना कमायेगा कि मां को भी यह काम नहीं करना पड़ेगा.

हाईस्कूल की परीक्षा में वह प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ. फलस्वरूप उसे छात्रवृत्ति के साथ उसी शहर के सरकारी कॉलेज़ में दाख़िला मिल गया.

पढ़ाई के साथ ही वो प्रतियोगी परीक्षाएं भी देता रहा. सफलता लगातार उसके क़दम चूमने लगी थी. पढ़ाई पूरी होते ही मुंबई की एक अच्छी कंपनी में उसकी नौकरी भी लग गयी और वो मां-पिता को जल्दी ही साथ ले जाने की बात कहकर मुंबई चला गया. अब तो नानकी-मंगलू के दिन सोने के और रातें चांदी की होने लगी थीं. बेटे का दूर रहना उन्हें अखरता लेकिन वे मुंबई जाने का सपना पालते हुए दिन बिताने लगे.

चार पांच साल इसी तरह गुज़र गये. खान-पान और रहन सहन में भी फ़र्क आ गया. अब वे ग़रीबी रेखा से ऊपर आ गये थे. लेकिन कहते हैं न कि सुख और दुख का चोली-दामन का साथ होता है. इस परिवार के भी अच्छे दिनों को न जाने किसकी नज़र लग गयी कि देखते ही देखते उनकी ख़ुशियों का किला अचानक ढह गया. एक दिन एक ऊंची इमारत की पुताई का कार्य करते हुए मंगलू पैर फिसलने से गिर गया और सिर फट जाने से उसकी वहीं मौत हो गयी. नानकी का तो जैसे संसार ही उजड़ गया. सिर पटक-पटक कर ख़ूब रोयी लेकिन अब क्या होना था. विशु को पड़ोसियों ने ख़बर कर दी. वो बदहवास होकर तुरंत छुट्टी लेकर घर आ गया. इमारत के ठेकेदार शोक प्रकट करने के साथ ही एक मोटी रक़म का चेक हरजाने के तौर पर विशु को सौंपकर चले गये.

कुछ दिन बाद मां कुछ सामान्य हुई तो विशाल ने उसे मुंबई चलने को कहा. वो भला अब वहां किसके सहारे रहती, बकरियों सहित घर बेचकर वे मुंबई आ गये यहां आकर विशाल ने सारी जमा पूंजी लगाकर एक छोटा-सा दो

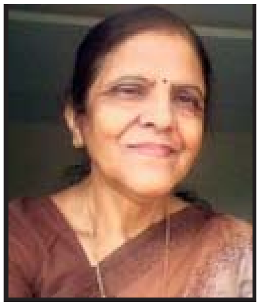

जन्म : ६ जून १९५१ (उज्जैन, म. प्र.)
वर्तमान निवास-मुंबई.

हाई स्कूल तक औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद मेरे साहित्य प्रेम ने निरंतर पढ़ते रहने के अभ्यास में रखा. परिवार की देखभाल के व्यस्त समय से मुक्ति पाकर मेरा साहित्य प्रेम लेखन की ओर मुड़ा और कंप्यूटर से जुड़ने के बाद मेरी काव्य-कला को देश विदेश में सराहना और पहचान मिली; गीत, ग़ज़ल के अलावा छंद विधाओं में विशेष रुचि है तथा मेरी रचनाएं मुद्रित पत्र पत्रिकाओं और अंतर्जाल पर लगातार प्रकाशित होती रहती हैं; लेखन की शुरुआत सितंबर २०११ से ; वर्तमान में१४ वर्षों से वेब पर प्रकाशित होने वाली पत्रिका/अभिव्यक्ति-अनुभूति (संपादक/पूर्णिमा वर्मन) के सह-संपादक पद पर कार्यरत हूं.

: प्रकाशन :

नवगीत संग्रह- 'हौसलौं के पंख'; गीत-नवगीत- संग्रह : 'खेतों ने ख़त लिखा'; ई बुक : मूल जगत का, बेटियां; एक गज़ल संग्रह : 'मैं ग़ज़ल कहती रहूंगी.'

: पुरस्कार व सम्मान :

पूर्णिमा वर्मन (संपादक वेब पत्रिका-'अभिव्यक्ति-अनुभूति') द्वारा मेरे प्रथम नवगीत संग्रह पर नवांकुर पुरस्कार.

कमरे, बैठक और रसोई वाला फ़्लैट ख़रीद लिया. नानकी इस नयी दुनिया में मन लगाने का प्रयास करने लगी, लेकिन विशाल के ऑफ़िस चले जाने के बाद अकेलापन उसे बेहद डरावना लगता. समय काटने के लिए घर के सारे काम वो स्वयं करती, फिर भी दिन पहाड़ जैसे लगते. अब उसने विशाल से शादी कर लेने की बात की. सुनकर वो मुस्कुरा दिया. दूसरे ही दिन विशाल अपनी सहकर्मी प्रतिभा को साथ ले आया और मां से बिना किसी भूमिका के कहा — 'मां हम दोनों एक दूसरे को प्यार करते हैं, मैं और प्रतिभा एक ही ऑफ़िस में कार्यरत हैं हमें आपकी सहमति और आशीर्वाद चाहिए.'

प्रतिभा ने झट से झुककर नानकी के पांव छू लिये. नानकी उसका सौंदर्य और विनम्र स्वभाव देखकर मुग्ध हो गयी. उसके मन की इच्छा इतनी जल्दी पूरी हो जायेगी, यह उसने सोचा भी न था. उसने तुरंत हामी भर दी. प्रतिभा मां-पिता की इकलौती संतान थी. वह अपने मां-पिता से विशाल को मिलवा चुकी थी. उन्हें भी इस शादी से कोई ऐतराज न था, सो बिना किसी लाग लपेट के उन्होंने अपने परिजनों की उपस्थिति में कोर्ट-मैरिज़ कर ली.

प्रतिभा का व्यवहार अपनी सास के प्रति अपनत्व और नम्रतापूर्ण था. नानकी भी उसे हाथों पर रखती और नौकरी के अलावा कोई काम नहीं करने देती थी. प्रतिभा ने उसके मना करने के बावजूद ऊपर के कार्यों के लिए एक कामवाली लगा दी, सिर्फ़ खाना बनाना ही नानकी के ज़िम्मे था.

सुख के दिन तो पंख लगाकर उड़ते जाते हैं, सो इनका समय भी उड़ते उड़ते कब पांच साल आगे निकल गया, पता ही न चला अब प्रतिभा की गोद में एक प्यारा-सा बेटा आ गया था, जिसका नाम प्रखर रखा गया. डिलीवरी के लिए मिली छुट्टी पूरी होते ही प्रतिभा ने शिशु को नानकी की गोद में डाल दिया. नानकी तो जैसे निहाल हो उठी. उसे मंगलू की बहुत याद आती. सोचती-आज वो होता तो कितना ख़ुश होता! मुन्ने को वो पल भर भी ख़ुद से दूर न करती, रात को भी अपने साथ ही सुलाती.

उड़ते-उड़ते समय दस साल और आगे निकल गया, लेकिन अब नानकी वृद्ध और अशक्त हो चली थी, ऊपर से दमे की बीमारी ने उसे कमरे तक सीमित कर दिया था. उसे लगता जैसे समय के पंख भी थक चुके थे, गति मंद होने लगी थी. प्रतिभा प्रखर को अब मां जी से दूर रखना चाहती थी. अतः काफ़ी विचार करके विशाल की सहमति से उसने नौकरी छोड़ दी, उसे घर में बीमार सास की उपस्थिति भी अखरने लगी थी.

एक दिन बातों–बातों में उसने विशाल से कहा, 'विशाल, प्रखर अब दस वर्ष का हो चुका है, उसे अब अलग कमरे की आवश्यकता है. मां जी दमे की परेशानी से दिन रात खांसती रहती हैं, ऐसे में प्रखर के स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ सकता है.'

'तुम चिंता मत करो प्रतिभा, हम प्रखर को मुंबई के एक बढ़िया हॉस्टल में शिफ़्ट कर देंगे और मां जी की देखरेख के लिए चौबीस घंटे एक सेविका को लगा देंगे.'

'यह तुम क्या कह रहे हो विशाल! प्रखर अभी बहुत छोटा है, मैं उसे ख़ुद से दूर बिलकुल नहीं करूंगी.'

'ठीक है, हम हॉल में ही प्रखर का बेड और स्टडी टेबल लगा देंगे.'

'लेकिन मेहमान और मित्र वर्ग का क्या होगा? क्या मैं यों ही घुटती रहूंगी?'

'कुछ समय सब्र करना ही होगा, हमारे पास और कोई रास्ता नहीं है प्रतिभा...'

'है, क्यों नहीं विशाल, मैं अब इस बीमारखाने में एक दिन भी नहीं रह सकती. उचित होगा कि हम मां जी को एक वृद्धाश्रम में भर्ती कर दें.'

सुनते ही विशाल को जैसे करंट का झटका लगा हो, उसकी आंखों से चिंगारियां फूटने लगीं. क्षण भर में समय ने उसे उस खाई की तरफ़ धकेल दिया जिसे पार करके उसने सफलता के शिखर को छुआ था. उसकी आंखों के सामने बीस साल पहले का बचपन का नज़ारा कौंध गया. मां-पिता का उसकी अच्छी शिक्षा और परवरिश के लिए संघर्ष, स्थानाभाव से वृद्ध बकरियों को कसाईखाने भेजना, बकरियों की कातर निग़ाहें, और कसाईखाने का वीभत्स नज़ारा चलचित्र की भांति जेहन से गुज़रने लगा. लेकिन आज मां...! उसकी रूह कांप उठी, और ज़ोर से चीख़ पड़ा — 'नहीं... मैं अपनी मां को कसाईखाने नहीं भेज सकता... तुम तलाक ले सकती हो...'

द्वारा अजय रामानी,
१६०१ /६ हेक्स ब्लॉक्स, सेक्टर-१०,
खारघर, नवी मुंबई -४१०२१०
मो.: ७४९८८४२०७२
ई मेल -kalpanasramani@gmail.com

कविता

लेट जा, भई लेट जा

डॉ. रणजीत

खाना खा और लेट जा,
पानी पी और लेट जा।
कसरत कर और लेट जा,
नाश्ता कर और लेट जा।
सब्ज़ी काट और लेट जा,
कविता छांट के लेट जा।
दवा खा और लेट जा,
हवा खा और लेट जा।
पेपर पढ़कर लेट जा,
ख़बरें सुन कर लेट जा।
थक जाये तो लेट जा,
छक जाये तो लेट जा।
पड़ी खाट है, लेट जा,
बड़ा ठाठ है, लेट जा।
कुछ ना सूझे, लेट जा,
कोई न पूछे लेट जा।
जब जी चाहे लेट जा,
गाहे-बगाहे लेट जा।
थोड़ा पढ़ और लेट जा,
थोड़ा लिख और लेट जा।
अपना घर है, लेट जा,
थकी उमर है लेट जा।
चिंता मत कर, लेट जा,
वक़्त से मत डर, लेट जा।
धोखा खाकर, लेट जा,
मौक़ा पा कर, लेट जा।
कोई बुलाये, लेट जा,
परवाह मत कर, लेट जा।
लेट जा भई, लेट जा,
सबसे अच्छा लेट जा।

२०९४, शोभा डहेलिया, बेलंदूर, बेंगलूरू-५६०१०३.मो. ९०१९३०३५१८

ग़ज़ल

डरता हूं मैं

चंद्रसेन 'विराट'

डरता हूं मैं प्रगाढ़ बहुत दोस्ती न हो,
फिर वो बिगड़ न जाये, कहीं दुश्मनी न हो.
अपने अहम् के जोश में करता तो हूं मगर,
नफ़रत ही एक रोज़ कहीं आशिकी न हो.
देता है कौन दस्तकें यों इतनी रात को,
उठ, खोल तो किवाड़, कहीं ज़िंदगी न हो.
ऐ मौत अपने साथ में ले चल न तूं जहां,
सब देवता ही देवता हों, आदमी न हो,
मैं सोचता हूं यह कि तुझे सोचता हूं मैं,
तू भी कहीं सदैव मुझे सोचती न हो.
मैं ज़िंदगी में ढूंढ़ रहा तुमको और तुम,
मेरी ग़ज़ल में ख़ुद को कहीं ढूंढ़ती न हो.
पहचानता हूं मैं पतन का दर्द इसलिए,
पहुंचूं शिखर पे मैं तो कभी वापसी न हो.
जीवन में धूप चांदनी का संतुलन रहे,
आंखें हों बंद तेज़ बहुत रोशनी न हो.

१२१, वैकुंठधाम कॉलोनी,
आनंद बाजार के पीछे,
इंदौर-४५२०१८ (म.प्र.)
मो.: ९३२९८९५५४०

कहानी

नदी, सीप और घोंघे

जयराम सिंह गौर

आज स्टेला क़रीब पच्चीस साल बाद अपने लड़के की शादी का निमंत्रण देने आयी थी. इतने साल बाद भी उसमें इतने बदलाव नहीं आये थे कि उसकी पहचान छुपा सकें, मिलने का अंदाज वही, न कोई झिझक न कोई संकोच. आते ही हलो कह कर गले लग कर किस किया तब तक उसका बेटा गाड़ी पार्क करके आ गया, स्टेला ने उससे कहा, 'हनी, मीट योर अंकल डिक.' लड़के ने चौंकते हुए हाथ बढ़ाते हुए कहा, 'हलो अंकल ऑय एम आलसो डिक.'

'वॉऊ, दैट्स गुड.'

मेरे चौंकने को स्टेला ने ध्यान से देखा. उसके चेहरे पर हल्की-सी स्मित आ गयी थी. वह चलने को हुई तब तक मेरी बेटी कॉफी लेकर आ गयी. मैंने कहा, 'स्टेला मीट मॉय डॉटर स्टेला.'

'वॉट! स्टेला?'

'यस.'

उसने स्टेला को भी आने के लिए बोला और अपने बेटे के साथ चली गयी.

समय को जैसे बैक गियर लग गया.

□

सात-आठ साल के एक लड़का-लड़की दौड़ते हुए चर्च के ढलान से उतरते हुए नदी के किनारे घाट के पास एक पेड़ के नीचे बने चबूतरे पर बैठ जाते, कुछ देर तक नदी को निहारने के बाद नदी के पास पहुंच कर सीपी-घोंघे बटोरने लगते. उन्हें लेकर फिर उसी चबूतरे पर आकर बैठ जाते. अब दोनों अपने-अपने सीपियां और घोंघे गिनने लगते. जाहिर था एक के कम एक के ज़ियादह होंगे जिसके कम होते वह फिर नदी के पास जाकर कुछ घोंघे-सीपी ले आता, फिर दूसरा जाता और ले आता अब पहले वाले के ज़ियादह हो जाते, यह खेल घंटों चलता. अंत में दोनों अपने-अपने घोंघे-सीपी फेंक एक दूसरे का हाथ पकड़े घंटों नदी की ओर चुपचाप ताका करते. इस क्रम को चलते सालों बीत गये.

अब बच्चे स्कूल जाने लगे थे. कुछ समझदार भी होने लगे थे पर इतने समझदार नहीं हुए थे कि सीपी-घोंघे छूट जाते. अब वे कॉलेज़ पहुंच गये थे, इस तरह नदी के किनारे बैठना कुछ लोगों की आंख की किरकिरी बन चुका था, उनमें एक था नॉरमन. उसने इस बात की ख़बर दोनों के घर वालों को कर दी. दोनों के घर वाले एक दूसरे से परिचित थे. उन लोगों ने आपस में बात की. बच्चों से बात की, उन लोगों ने स्वीकार कर लिया कि पढ़ाई के बाद इनकी शादी कर दी जाये.

पर उस चबूतरे पर बैठना अभी तक बरकरार था. चबूतरे पर बैठे हाथ में हाथ लिये नदी की तरफ़ ताकना अब भी ज़ारी था. अब उन दोनों ने भविष्य के ताने-बाने बुनने शुरू कर दिये थे. अब एक दूसरे की छुवन उनके शरीरों को ताप से भरने लगी थी. दोनों एक दूसरे के शारीरिक भूगोल से अच्छी तरह परिचित हो चुके हैं फिर भी अंतिम सीमा पार नहीं की. ख़्यालों की दुनिया में खोये न जाने क्या-क्या सोचा करते थे.

डिक को मेडिकल की पढ़ाई के लिए इंग्लैंड भेज दिया गया. डिक था तो इंग्लैंड में पर वह मानसिक रूप से कानपुर में स्टेला के पास रहता था, वहां से डिक हर हफ़्ते स्टेला को पत्र लिखता. वह पत्रों में इंग्लैंड के बारे में उसे

बताता रहता, स्टेला अपने घर और उसके घर का हाल लिखती. ख़ूब मज़े से ज़िंदगी चल रही थी, डिक उसे बताता कि शादी के बाद हनीमून इंग्लैंड में होगा. स्टेला के सपने डिक और इंग्लैंड की सैर से भरे रहते. पढ़ाई के अंतिम वर्ष के अंतिम महीने दिन काटना भारी पड़ रहा था, वह ख़ूब शॉपिंग कर रहा था स्टेला के वेडिंग गॉउन से लेकर न जाने क्या-क्या. अचानक दो महीने से पत्र आने बंद हो गये. डिक परेशान, उसने अपनी भाभी को पत्र लिखे पर उनका भी जवाब नहीं मिला.

लौट कर आने पर मालूम हुआ कि स्टेला की शादी नारमन से हो गयी है. डिक सन्नाटे में आ गया. उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करे. उसने अपनी भाभी से पूछा, 'स्टेला की शादी हो गयी और आपने मुझे बताया नहीं?'

'क्या स्टेला की शादी हो गयी?'

'हां, क्या उनके यहां से इन्वीटेशन नहीं आया था?'

'नहीं तो, हां उसका मेरे यहां आना काफ़ी कम हो गया था.'

वह स्टेला के घर गया तो उसके फादर बड़ी बेरुख़ी से पेश आये, चाय तो दूर बैठने तक को नहीं कहा. झटके से कह दिया कि वे लोग मद्रास में हैं. उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था. वह बुरी तरह आहत हो गया था. इसी बीच उसकी भाभी को डिलीवरी हुई, उसी समय वह बीमार पड़ीं और बच्ची को मां की गोद में डाल चल बसीं.

मेरे बड़े भाई ठीक नेचर के आदमी नहीं थे, उनकी संगत निहायत गंदी थी. शराब, जुआ और न जाने क्या क्या? उनकी घर में किसी से नहीं पटती थी, भाभी से तो उनकी बिल्कुल नहीं पटती थी. भाभी हर तरह से सुंदर थीं तन से भी मन से, वह उनके दोस्तों को भी नहीं पसंद करती थी. मेरे पापा तो उन्हीं के कारण चले गये. मम्मी ने उनके दोस्तों के घर आने पर पाबंदी लगा दी थी. भइय्या इसके पीछे भाभी का हाथ मानते और उन्हें परेशान करने की नयी-नयी तरकीबें निकालते, मार-पीट करते. अंत में तंग आकर मम्मी ने उन्हें घर से निकाल दिया और क़ानूनी कार्यवाही करके उन्हें प्रॉपर्टी से डिबार कर दिया. यह काम बहुत पहले होना चाहिए था, भाभी तब तक बिल्कुल टूट चुकी थीं.

डिक का किसी काम में मन नहीं लगता वह हमेशा स्टेला के ख़्यालों में खोया रहता. उसकी मां ने चर्च के

जन्म : १२ जुलाई १९४३

ग्राम व पोस्ट रेरी, जनपद कानपुर (देहात).

: विधाएं :

कहानी, कविता, गीत एवं दोहे.

: प्रकाशन :

मेरे गांव का किंग एडवर्ड (कहानी संग्रह), कवित्रयी में दोहे संकलित, विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएं प्रकाशित एवं आकाशवाणी से कथापाठ.

: संप्रति :

भारतीय डाक विभाग से सेवा निवृत्ति के बाद पूर्ण-कालिक अध्ययन एवं लेखन.

फ़ादर से बताया. फ़ादर एक दिन घर आये. उन्होंने डिक से पूछा, 'तुम्हारा मेडिकल तो पूरा हो गया.'

'यस फ़ादर.'

'फिर प्रैक्टिस क्यों नहीं करते?'

'मन नहीं करता.'

'देखो इस तरह तुम लोगों का नुकसान कर रहे हो.'

'तुम इंग्लैंड से एक अच्छे डॉक्टर बनकर आये हो जिसका फ़ायदा यहां के लोगों को मिलना चाहिए.'

डिक को चुप देख फ़ादर ने कहा, 'देखो डिक मिशन के अस्पताल में डॉक्टर की ज़रूरत है तुम वहां ज़्वायन कर लो.'

डिक वहां जाने लगा. मां ने कई बार शादी के लिए कहा पर वह तैयार ही नहीं हुआ, अब उसके जीवन के दो उद्देश्य बन गये थे एक तो वह बच्ची, दूसरे ग़रीबों की सेवा. समय अपने हिसाब से चल रहा था. डिक स्टेला को भूल

नहीं पा रहा था, बच्ची को जब स्कूल भर्ती कराने के लिए ले गया तो एडमीशन फ़ॉर्म पर उसके नाम की जगह स्टेला लिख दिया था.

इन्वीटेशन देने के बाद आज स्टेला फिर आयी, घर में कोई नहीं था, मैं इज़ीचेयर पर आंख बंद किये लेटा था उसने पहले की तरह पीछे से आकर अपने दोनों हाथों से मेरी आंखें बंद कर लीं, मैंने उसके हाथों पर हाथ फेरते हुए कहा, 'स्टेला तुम.'

'तुमने इतने दिनों बाद भी मुझे छूकर पहचान लिया.'

'पहचानता कैसे नहीं, तुम्हारी छुवन के बीच आज तक कोई आया ही नहीं.'

स्टेला 'हूं' कह कर उदास हो गयी, उसे नॉर्मल करने की गरज़ से मैंने कहा, 'यार बहुत अरसे से तुम्हारे हाथ की चाय नहीं मिली.'

'अभी मिलती है,' कह कर वह किचन की तरफ़ चली गयी. इस घर की हर एक चीज़ उसे आज तक सब याद थी. तब तक क़िताबें उठाये बेबी आ गयी. किचन में खट-पट सुन उसने पूछा, 'किचन में कौन है?'

'तुम्हारी स्टेला आंटी.'

'वह कब आयीं.'

'कुछ देर पहले.'

वह क़िताबें मेज़ पर रख किचन में चली गयी.

'लीजिए गरमा गर्म चाय और पकौड़े.'

'वाह चाय के साथ पकौड़े भी, पकौड़ों के लिए तो मैंने कहा नहीं था.'

'लेकिन मैं तो जानती हूं कि तुम्हें पकौड़े बहुत अच्छे लगते हैं.'

हम तीनों ने चाय पी. वह काफ़ी देर बेबी से बात करती रही. फिर उसने कहा, 'बेबी आ गयी है चलो हम लोग नदी की तरफ़ चलते हैं.' बेबी ने सहमति दे दी.

वहां कुछ भी नहीं बदला था. नदी किनारे नाव, बरगद, उसके नीचे का चबूतरा सभी कुछ वैसा था केवल समय आगे खिसका था. नदी के पास वह चप्पल उतार पानी में घुस गयी और मुझे भी बुलाने लगी. उसका बचपन पूरी तरह जी उठा था, बिल्कुल वही सालों पहले वाली स्टेला सामने खड़ी थी, वह उसी तरह सीपी-घोंघे बटोर रही थी. मैं अपलक उसे निहार रहा था वह सीप-घोंघे समेटे मुझे गुम-सुम देख मेरे पास आ गयी, बोली, 'क्या हो गया तुम्हें?'

मैंने चौंक कर कहा, 'कुछ तो नहीं.'

'कहीं खो गये थे?'

'शायद! नहीं तो.'

'चलो चबूतरे पर बैठते हैं, आज मैं कोई बेईमानी नहीं करूंगी तुम्हें आधे सीप-घोंघे दे दूंगी. हम चबूतरे पर जाकर बैठ गये. अब वह गुम-सुम हो गयी, मैंने उसे हिलाते हुआ पूछा, 'अब तुम्हें क्या हुआ?'

उसने एक क्षण मेरी ओर देखा और लिपट कर रोने लगी. मैं घबरा गया, जितना उसे शांत करने की कोशिश करता उतना ही वह और रोने लगती. किसी तरह शांत हुई, घर चलने को कहा तो उसने थोड़ी देर और बैठने को कहा, वह मेरा हाथ उसी तरह पकड़ कर बैठी थी जैसे बचपन में बैठती थी.

घर पहुंचने पर बेबी ने कहा, 'कितनी देर लगा दी डिक भाई अभी आंटी को खोजते हुए आये थे.'

'यहीं थे नदी के किनारे, तुमने उसे बताया नहीं क्या?'

उसने हंसते हुए मज़ाक किया, 'क्या सीपी और घोंघे बटोर रहे थे?'

स्टेला ने हंसते हुए कहा, 'तू ठीक कह रही है.'

'पर वे हैं कहां?'

'उन्हें फिर नदी किनारे रख आये.'

थोड़ी देर बाद डिक आया, वह उसके साथ चली गयी.

वह चली तो गयी पर मुझे सोचने के लिए बहुत कुछ दे गयी. मैं उसी के बारे में लगातार सोच रहा था कि बेबी चाय लेकर आ गयी. चाय पीते हुए उसने पूछा, 'आंटी ने अपने बेटे का नाम डिक क्यों रखा कोई और नाम भी तो रख सकती थीं?'

'यह तुम उसी से पूछना.'

'पापा आपने भी तो मेरा नाम स्टेला रखा है, कोई और नाम भी तो रख सकते थे?'

'स्टेला मुझे अच्छा लगा मैंने रख दिया, तुम्हें न अच्छा लग रहा हो तो अभी चेंज़ करवा दें ?'

'नहीं, नहीं स्टेला मुझे भी अच्छा लगता है, मैंने ऐसे ही पूछ लिया.'

बेबी अब बड़ी हो गयी है और उसका दिमाग़ भी चलने लगा है. स्टेला को देखने के बाद ही उसने पूछा कि

मैंने उसका नाम स्टेला क्यों रखा, सोच नहीं पा रहा हूं कि असलियत सामने आने पर क्या होगा.

स्टेला आज उदास दिखी. पूछा, 'क्या हुआ?'

'जानते हो, डिक आज पूछ रहा था कि मैंने उसका नाम डिक क्यों रखा.'

'तुमने क्या कहा?'

'मैंने कहा डिक मुझे अच्छा लगा रख दिया, तुम्हें एतराज हो तो चेंज़ करवा दूं.'

'फिर?'

'उसने अजीब तरह से मुस्कुरा कर 'अच्छा' कहा. डिक उसकी मुस्कुराहट ने मुझे बेचैन कर दिया है लगता है तुमसे मिलने के बाद इसके दिमाग़ में कुछ चल रहा है.'

'बच्चे अब छोटे नहीं हैं, यही कल बेबी भी मुझसे पूछ रही थी कि उसका नाम स्टेला क्यों रखा, लगता है इन दोनों के दिमाग़ में कुछ चल रहा है.'

'अब क्या होगा ?'

'डोन्ट वरी, टाइम सब सेट कर देगा.'

आज स्टेला ने नदी की ओर चलने को भी नहीं कहा और जल्दी चली गयी. अब मुझे भी बेबी से डर लगने लगा है, लगता है उससे बहुत सोच समझ कर बात करनी चाहिए.

कॉलेज़ से आते ही बेबी ने पूछा, 'आपको मालूम नहीं क्या?'

'क्या?'

'आंटी चार-पांच दिन से बीमार हैं.'

'तुम्हें कैसे मालूम?

'डिक कॉलेज़ नहीं आ रहा था, एक्ज़ाम सर पर है, मैं उसको देखने उसके घर गयी थी, वहां देखा तो आंटी बीमार मिलीं, चलिए अभी चलते हैं.'

मैंने स्टेला के घर पहुंचते ही उससे पूछा, 'तुमने मेरा फ़ोन क्यों नहीं उठाया और अपनी बीमारी की ख़बर क्यों नहीं दी?'

'मैंने आपको बेवज़ह परेशान नहीं करना चाहा.'

'तुम्हारी बीमारी से बढ़ कर कोई वजह हो सकती है क्या? इट इज़ वेरी सैड, स्टेला तुमने मुझे ग़ैर माना.'

'नो, नो, डोन्ट टेक अदरवाइज़, कोई ऐसी बात नहीं है.'

'तभी तुमने अपनी ऐसी हालत बना रखी है, मालूम है एक्ज़ाम सर पर हैं और डिक कॉलेज़ नहीं जा रहा है.'

स्टेला रोने लगी. बड़ी मुश्किल से चुप हुई. बच्चे जानबूझ कर कमरे से निकल गये थे. बच्चे आ गये, मैंने डिक से पूछा, 'किसका इलाज़ हो रहा है.'

'डॉ. सेठी का.'

क्या बताया उन्होंने?'

'वायरल है कुछ दिन लेगा.'

'तुमने मुझे ख़बर नहीं की और कॉलेज़ छोड़ कर बैठ गये.'

उसने कोई जवाब नहीं दिया और स्टेला की तरफ़ देखने लगा. मैंने उससे कहा वह कॉलेज़ नहीं छोड़ेगा. स्टेला को मैं देख लूंगा. मैंने बेबी से कहा, 'तुम घर जाओ और हम सबके लिए खाना बनवा कर ले आओ, अपनी आंटी से पूछ लो वह क्या खायेंगी, चाहो तो डिक को भी साथ लेती जाओ.'

बच्चे चले गये, मैं स्टेला का माथा सहला रहा था, एकाएक उसने मेरा हाथ पकड़ कर अपने ऊपर खींच लिया और फिर रोने लगी. मैं घबरा गया कि क्या हो गया. मैंने उसे उठा कर तकिए के सहारे बिठाया, उसे पानी पिलाया उसके नॉर्मल होने पर पूछा, 'तुम्हें मेरी क़सम है, सही बताना तुमने मुझे ख़बर क्यों नहीं दी?'

'किस मुंह से देती?'

'क्यों?'

'मेरे कारण तुम्हारी ज़िंदगी ख़राब हो गयी.'

'कैसे?'

'मैंने तुम्हारा इंतज़ार नहीं किया, शादी कर ली, बेवफ़ा तो मैं निकली. डिक तुम बिलीव करो या न करो पर सच यही है कि मैं तुम्हें एक क्षण को भी नहीं भूल पायी.'

'छोड़ो, जो होना था हो गया, पर यह सब हुआ कैसे? नारमन को तो तुम हेट करती थीं.'

'झूठ नहीं बोलूंगी. जब उन लोगों ने बताया कि तुमने इंग्लैंड में शादी कर ली है और वहीं सेटल होने का फ़ैसला कर लिया है तो मेरा भी विश्वास एक बार हिल गया था.'

'तुम्हें मेरी मां और भाभी से तो पूछना चाहिए था.'

'तुम्हारे भाई साहब का मेरे घर आना-जाना बढ़ गया था, वह घंटों पापा के पास बैठे रहते, शतरंज खेलते. पापा का भी समय कट जाता था, एक दिन पापा ने उन्हें ड्रिंक ऑफ़र की जिसको उन्होंने यह कह कह मना कर दिया कि

उन्होंने ड्रिंक करना छोड़ दिया है. एक बार पापा ने उनसे तुम्हारे बारे में पूछा तो उनका वही जवाब कि डिक इंग्लैंड में अपने साथ पढ़ने वाली लड़की लोला से शादी करके वहीं सेटल हो गया, मुझसे यह ग़लती हो गयी, मुझे तुम्हारी मां और भाभी से बात करनी चाहिए थी.'

'जानती हो भाई साहब की क्रूएल्टी की वजह से मेरी भाभी छ: दिन की स्टेला को मम्मी की गोद में डाल चल बसीं. मैंने कितनी बार उनसे डिवोर्स के लिए कहा पर वह हमेशा कहती थीं कि इतनी अच्छी फ़ैमिली कहां मिलेगी और फ़ैमिली की ख़ातिर मेरी इतनी अच्छी भाभी नहीं रहीं. हां, एक बात बताओ तुमने मेरे ख़तों का ज़वाब क्यों नहीं दिया?''

'मिलते तो देती, क्या तुमने शादी नहीं की?'

'शादी ! किससे शादी करता, जिससे करना...'

'हां, कहो डिक कहो वह तो बेवफ़ा निकल गयी, मैं बिल्कुल बुरा न मानूंगी.'

डिक ने स्टेला के मुंह पर हाथ रखते हुए कहा, 'नहीं स्टेला ऐसा नहीं, प्यार बस एक बार होता है. जिससे मैं प्यार नहीं कर सकता उससे मैं शादी कैसे करता, धोखा मैं किसी को दे नहीं सकता.'

स्टेला फिर रोने लगी. किसी तरह उसे चुप कराया. वह फिर बोली, 'शादी की रात ही उसकी असलियत सामने आ गयी थी. जानते हो डिक गोल्डेन नाइट में वह नशे में धुत हो कर आया था. उस दिन किसी लड़की के क्या अरमान होते हैं यह तो जानते ही होगे? उस रात उसने रेप किया था, मेरी सोल तो उसी दिन मर गयी थी. एक्चुअली उसकी निग़ाहें पापा की प्रॉपर्टी पर थीं. तुम्हारे भाई ने पोस्ट ऑफ़िस से हम लोगों के लेटर ग़ायब करवाये थे. कई बार सोचा कि सुसाइड कर लूं पर न कर सकी. पापा की बीमारी मुझे ज़िंदा रहने के लिए मज़बूर कर रही थी. थोड़े दिन के बाद डिक की मौज़ूदगी का अहसास हुआ. कई बार दिमाग़ में आया कि एबॉर्ट करवा दूं पर रीना ने समझाया कि इसमें इसका क्या दोष! उस रात के बाद उसको मैंने कभी अपने पास नहीं आने दिया. असलियत कहां छिपती है, पापा को मालूम हो गया. उसी बीच नारमन आ गया था, उसे देख पापा का पारा हाई हो गया. उन्होंने पुलिस को फ़ोन कर दिया, वह डर कर भाग गया. पापा पर इसका ग़लत असर हुआ. उनको अटैक पड़ गया और वह नहीं रहे. वो पापा के फ़्यूनरल में भी नहीं आया.'

'इसके बाद वह कभी आया?'

'नहीं, एक दिन पुलिस के एक सिपाही ने आकर बताया कि नारमन का एक्सीडेंट हो गया, बॉडी पोस्टमार्टम हॉउस में पड़ी है. न चाहते हुए जाना पड़ा. पड़ोसियों की मदद से बॉडी का फ़्यूनरल करवा दिया. उसके मरने का मुझे जरा-सा भी अफ़सोस नहीं हुआ.'

'इतना सब हो गया तुम्हें मेरी याद नहीं आयी?'

'ख़ूब आयी पर मेरा संकोच मुझे जकड़े रहा. जानते हो मैंने अपने बेटे को उसका नाम भी नहीं दिया.'

'फिर डिक की शादी में कैसे इन्वाइट करने आ गयीं?'

'डिक ने पूछा था कि उसके साथ एक लड़की स्टेला डिसूज़ा पढ़ती है क्या उसे इन्वाइट कर सकता है, उसी ने बताया कि वह तुम्हारी लड़की है. मैंने सोचा तुमने अपनी बेटी को मेरा नाम दिया है इसके माने मैं अभी तक तुम्हारे दिल में ज़िंदा हूं और हिम्मत करके आ गयी.'

'डिक यह सब जानता है?'

'नहीं मैंने उसे कुछ नहीं बताया.'

'लेकिन आज हम लोगों ने सब जान लिया,' कहते हुए दोनों बच्चे आ गये.'

जिसका डर था वही हो गया. हम लोग सहमे हुए बच्चों को देख रहे थे. उन लोगों ने कहा, 'अब आप लोगों को एक बात हमारी भी माननी पड़ेगी.'

'क्या?' हम दोनों एक साथ बोल पड़े.

'जो भूल पहले हुई थी उसे सुधार लिया जाये.'

'क्या मतलब?'

'आप दोनों एक हो जायें.'

'इस उम्र में, क्या कहेंगे लोग?'

'जो कहें, कहने दीजिए, यह हम लोगों का पर्सनल मामला है.'

'अरे इससे क्या मिलेगा?'

'हम लोगों को मम्मी-पापा तो मिल जायेंगें', कहते हुए दोनों बच्चे आकर हम दोनों से लिपट गये.

१८०/१२ एन.एल सी., किदवई नगर,
कानपुर-२०८०२३
मो. : ९४५१५४७०४२
ई-मेल : jrsgaur@gmail.com

दो लघुकथाएं

सहिष्णुता बनाम असहिष्णुता

✍ डॉ. कुंवर प्रेमिल

नित्य प्रति कुछेक सेवा निवृती एक पार्क में गपशप करते हुए समय गुज़ारते. साहित्य, राजनीति, सामाजिक, पारिवारिक परिचर्चाएं करते. उनमें नये-नये विषयों का समावेश होता. हमेशा तात्कालीन विषयों पर तब्सरा करते जो जानकारी में वृद्धि करते और मनोरंजन का साधन भी बनते.

एक दिन एक सज्जन बोले – आजकल अख़बारों में सहिष्णुता-असहिष्णुता की चर्चा परम पर है पर बाजिब रूप से उसकी कहानी स्पष्ट नहीं हो पा रही है. आज इस विषय पर चर्चा तो हो पर इस में राजनीति कदापि शामिल न की जाये.

पाठकजी ने आगे का मोर्चा संभाला. बंधुवर, यह ऐसा ही है जैसे मेरी बीमारी में आप लोग मुझे देखने आये तो हुई सहिष्णुता. जाते-जाते आप लोगों ने कहा – हुजूर, महंगे खजूर खिलाने के लिए आभार. अब आप दुबारा कब पड़ेंगे बीमार ताकि दुबारा खजूर खाने को मिलें – यह हुई असहिष्णुता.

गुप्ताजी बोले – यहां कुछ ज़्यादा स्पष्ट नहीं है. अगर मैं यह कहूं कि गोवर्धन भाई मुझसे एक हज़ार ले गये थे उधार तो मेरी ओर से हुई यह सहिष्णुता परंतु उन्होंने आज तक मुझे मेरे पैसे नहीं लौटाये तो यह हुई असहिष्णुता.

गोवर्धनजी तिलमिलाकर कुछ कहते, इसके पहले तिवारी जी बोले – हमारा देश अति संवेदनशील है यह सहिष्णुता की श्रेणी में और असंवेदनशील पाकिस्तान को मान लीजिए असहिष्णुता की श्रेष्ठी में. विपरीत स्वभाव के जुड़वां है ये. गोवर्धनजी आक्रोश में बोले – भाइयों, आइंदा व्यक्तिगत कटाक्ष न किये जायें. आज की बैठक में व्यक्तिपरक राजनीति हुई है मुझे लेकर. अतः आज की इस बैठक को असहिष्णुता की श्रेणी में गिनकर क्यों न समाप्ति की घोषणा कर दी जाये.

प्यास

प्यास दो तरह की होती है एक तन की दूसरे मन की. तन की प्यास तो घूंट दो घूंट पानी से बुझ भी जाती है पर मन की प्यास...

मन की प्यास युगों-युगों से चली आ रही है. उसकी संतुष्टि कैसे होगी? यह कोई नहीं जानता है. आज तक कोई यह भी नहीं जान पाया है कि किसी को कभी संतुष्टि मिली भी होगी!

- डॉ. कुंवर प्रेमिल

एम.आई.जी.-८,
विजयनगर, जबलपुर-४८२००२ (म. प्र.)
मो. : ९३०१८२२७८२

पाठकों/ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय फ़ॉर्म पर अपना नाम, पता, पिन कोड सहित अंग्रेज़ी में साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें. **- संपादक**

आमने-सामने

कविता से कहानी तक की यात्रा

✍ जयराम सिंह गौर

बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठ खोलना चाहता है, लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने-सामने'. अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नी सिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठाकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रूपसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रजाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर', डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम', सुरेंद्र रघुवंशी, राजेंद्र वर्मा, डॉ. सेराज खान 'बातिश', डॉ. शिव ओम 'अंबर', कृष्ण सुकुमार, सुभाष नीरव, हस्तीमल 'हस्ती', कपिल कुमार, नरेंद्र कौर छाबड़ा, आचार्य ओम प्रकाश मिश्र 'कंचन', कुंवर प्रेमिल, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि', डॉ. स्वाति तिवारी, डॉ. किशोर काबरा, मुकेश शर्मा, डॉ. निरुपमा राय, सैली बलजीत, पलाश विश्वास, डॉ. रमाकांत शर्मा, हितेश व्यास, डॉ. वासुदेव, दिलीप भाटिया, माला वर्मा, डॉ. सुरेंद्र गुप्त, सविता बजाज, डॉ. विवेक द्विवेदी, जयप्रकाश त्रिपाठी, डॉ. अशोक गुजराती, नीतू सुदीप्ति 'नित्या', राजम पिल्लै, सुषमा मुनींद्र और अशोक वशिष्ठ से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है जयराम सिंह गौर की आत्मरचना.

१२ जुलाई १९४३ को मेरा जन्म कानपुर जनपद के रेरी गांव के एक साधारण क्षत्रिय परिवार में हुआ जो ज़मींदारी के मुक़दमे में बिल्कुल टूट चुका था. यहां तक कि उस परिवार की सीर (कृषि योग्य भूमि) भूमि भी नहीं रह गयी थी. एक सेठ का कर्ज़ भी चढ़ गया था. पिता जी बड़े जीवट के आदमी थे. मेरी मां बताया करती थीं कि उन विषम परिस्थितियों में भी हार नहीं मानी और लोक-लाज की परवाह किये बिना उसी सेठ के यहां नौकरी करने लगे. समय एक जैसा नहीं रहता है. उसने पलटा खाया और मेरे एक दूर के मामा की कृपा से हम लोगों की सीर वापस मिल गयी और ज़िंदगी फिर रेंगने लगी. यह सब बातें मैंने सुनी हैं.

आज़ादी के पहले का समय था. ज़मींदारी अपने चरम पर थी. आम आदमी को कीड़ा-मकोड़ा समझ कर ज़मींदार लोग व्यवहार करते थे. उनकी सुनने वाला कोई नहीं था. १५ अगस्त १९४७ की धुंधली सी याद अब तक बची हुई है. रोज प्रभात फेरियां होती थीं. उसमें लोग 'उठ जाग मुसाफिर भोर भई अब रैन कहां जो सोवत है,' गाया करते थे. १४ अगस्त की रात सब लोग गांधी चबूतरे पर एकत्र हुए. जैसे ही १२ बजे, बंदूकें दाग़ी गयीं और भारत माता का जयकारा लगा कर तिरंगा फहरा दिया गया. कुछ लोग बोले भी थे लेकिन वह मेरे पल्ले नहीं पड़ा था फिर महात्मा गांधी और नेहरू के जयकारों के साथ विसर्जन हुआ. उस सारी रात गांव नहीं सोया था. एक अजीब उत्तेजना तारी थी. सभी को ऐसा लग रहा था कि सुबह होते ही उनके सारे कष्ट दूर हो जायेंगे. बड़ों को क्यों नींद नहीं थी यह तो नहीं मालूम पर हम बच्चों की नींद मिठाई ले गयी थी.

समय तो अपनी गति से चलता है. इंटर में आते-आते मेरा विवाह हो गया. तीसरे साल एक कन्या भी आ गयी. अब कमाई की चिंता सवार हुई. डाकघर में वैकेंसी निकली थीं. परीक्षा दी, आर. एम. एस. में हो गया. सितंबर १९६४ में ट्रेनिंग के लिए सहारनपुर चला गया. पहली पोस्टिंग शाहजहांपुर मिली, शहर का नाम जितना भव्य

शहर उतना ही गंदा था. वहां की आर्मी क्लोदिंग फ़ैक्ट्री में ओवरटाइम के चलते मकान के किराए आसमान छू रहे थे, मैं ११०-२४० के स्केल का आदमी, मेरे समझ में नहीं आ रहा था कि किस तरह गुज़र होगी. मैंने ट्रेनिंग की १५ दिन की अवधि को कार्यालय के गेस्टरूम में बिताने की सोची. इसके लिए मैंने वहां के इंचार्ज़ त्यागी जी से बात की वह फौरन मान गये. हफ़्ता भर ही बीता था कि वहां की विज़िट करने सबडिवीज़नल इंस्पेक्टर श्री आर. डी. मिश्रा पधार गये. उन्होंने देखा कि उनके ठहरने के कमरे में कोई दूसरा जमा हुआ है. मेरी पेशी हो गयी. उन्होंने पूछा, 'आप तो इस रूम के इंटाइटेल हैं नहीं फिर कैसे इसमें जमे हैं?'

'आप बिल्कुल ठीक कहते हैं, मैं नया-नया आया हूं अनजाना शहर है, कमरा ढूंढ़ने की कोशिश कर रहा हूं, एक समस्या और, मैं अकेला हूं कोई मकान देने को जल्दी तैयार नहीं होता अब आप ही बतायें सर ऐसे में मैं कहां जाऊं?

'अरे क्या सर, सर लगा रखी है मैं तुम्हें सर दिखता हूं?'

'कुछ ग़लती हुई, सर?'

'अरे फिर वही सर, तुम्हें किसी ने बताया नहीं मैं सर नहीं चचा हूं.'

मैंने उनके चरणस्पर्श किये तो वह भावुक हो गये बोले, 'अरे, अरे यह क्या कर रहे हो?' मैंने कहा, 'मैं अपने चचा के पैर छू रहा हूं,' और उस दिन से चचा-भतीजे का रिश्ता पक्का हो गया. शाहजहांपुर के कार्यालय का माहौल बिल्कुल साहित्यिक नहीं था. न ही वहां कोई ऐसा व्यक्ति ही संपर्क में आया.

१९६८ में मैं कानपुर आ गया. मेरे कार्यालय के कई साथी कविता लिखते थे. इस कारण ऑफ़िस में साहित्यकारों का जमावड़ा लगा रहता था. उनमें एक थे डॉ. प्रतीक. वह एक पुस्तक 'कानपुर के कवि' निकाल रहे थे. वे जब भी आते अपनी पुस्तक के लिए कविता का तकाज़ा करते. मैंने यह कविता उनको दे दी...

कविता :

'इसी संसार में जीना है.
तुम फिर आ गये,
इतिहास में अमरता के सपने दिखाने
मुझे यहीं जीने दो.

जयराम सिंह गौर

मुझे इतिहास में नहीं,
इसी संसार मे जीना है,
मैं, जानता हूं,
ऐतिहासिक अमरता के लिए,
कर्ण की मृत्यु मरना होगा,
जानते हुए भी जीवन के अमोध रक्षक,
प्रवंचकों को सौंपना होगा,
सच बताओ,
क्या दिया तुमने कर्ण को ?
सारा जीवन कुंठा में जिया,
अधूरी आस लेकर मरा,
अपने चहेतों के लिए,
तुमने उसे बार-बार छला,
उसका यश-गान तो दूर,
अधर्मियों का साथी बता टाल दिया,
शपथ ले कर बताओ,
क्या कर्ण वैसा ही था,
जैसा तुमने संसार को बताया?
सुनो,
वह द्वापर का कर्ण था,
धार्मिक मान्यताओं से ग्रस्त था,
पर मैं,
कलयुग में जीता हूं,
धर्म के हर प्रयोग को ,
भली-भांति समझता हूं,
मै नहीं आने वाला
तुम्हारी बातों में,
कान खोल कर सुनो,

तुम्हें मुबारक हो तुम्हारी ऐतिहासिक अमरता,
मुझे इतिहास में नहीं,
इसी संसार में जीना है.'

०००

और मैं भी कानपुर के कवियों की गिनती में आ गया. पुस्तक छप कर आ गयी, मेरे सहकर्मी शतदल ने वह कविता देखी. तारीफ़ भी की और साथ ही साथ छंदबद्ध गीत लिखने की सलाह देने के साथ ही गीत संबंधी जानकारी भी दी. कुछ दिनों के बाद एक गीत बन गया, उनको दिखाया वह बड़े प्रसन्न हुए. चाय मंगायी गयी और मेरे इस गीत का विधिवत रजिस्ट्रेशन हुआ —

गीत :

'दूर तक फैला नदी का कूल,
तिरती नांव,
सच बहुत अच्छा लगा अब की तुम्हारा गांव.
श्याम मेघों को परसती,
श्वेत बगुलों की कतारें,
और लहरों मे नहाता चांद,
सावन की फुहारें
बांसुरी से हम बजे, इस ठांव से उस ठांव.
सच.......
कुछ नहीं था और,
केवल साथ ही तो था तुम्हारा
जेठ का भी दिन लगा,
मधुमास से भी अधिक प्यारा,
रेत चंदन हो गयी छूकर तुम्हारे पांव.
सच......
देह किसलय हो गयी थी,
देखती थी आंख सपने,
ज्यों सिमट कर सृष्टि सारी,
आ गयी थी पास अपने,
और हम बुनने लगे थे, इंद्र-धनुषी छांव.
सच.........

०००

अब गीत लिखना शुरू हो गया. पर गोष्ठियों में जाने से कतराता रहता था. इसी बीच हिंदी दिवस पर कार्यालय में एक काव्य गोष्ठी हुई, जिसमें शतदल ने जबरन मेरा काव्यपाठ करा दिया. उसी गोष्ठी में श्री आर. के. प्रेमी जी और मृदुल जी भी थे. मृदुल जी ने मेरा परिचय सुनील जी से करवाया. प्रेमी जी ने मुझे काव्यगोष्ठियों में ले जाना शुरू कर दिया और इस तरह कवियों के बीच मेरी पहचान बनने लगी. यह गीत मेरे कविमित्र श्री सुनील बाजपेई को इतना पसंद है कि आज तक हर गोष्ठी में इस गीत की फरमाइश करते हैं. इसी बीच गोष्ठियों में मैने श्री शैलेंद्र शर्मा के दोहे सुने, काफ़ी अच्छे लगे. मैंने भी प्रयास किया और मैं भी दोहा लिखने लगा. पत्र पत्रिकाओं में छपे भी और लोगों ने सराहे भी. मेरा एक माइनस प्वाइंट था कि मेरा गला सुरीला नहीं था और गीत तो बिना गले के गोष्ठियों में नहीं जमता था. पढ़ने में वैसे मेरे गीत ठीक थे इसलिए गोष्ठियों में अक्सर दोहे ही पढ़ता था. कुछ दोहे —

'पछुआ सन-सन बह रही, ठिठुर रही है रात ।
पैर पेट में घुस रहे, फिर भी कांपे गात ।।
लगा शिशिर को अंक से, पछुआ ने की बात ।
सिसकारी भरती रही, पूनम सारी रात ।।
सर्दी में मरते रहे, लोग यहां बेभाव ।
काग़ज़ पर जलते रहे, चारो ओर अलाव ।।
फैलाया ऋतु राज, ने अपना माया-जाल ।
होंठ हुए हैं बांसुरी, नयन हुए वाचाल ।।
साबुन से धुल जायें ज्यों, दाग़ आम औ' ख़ास ।
वैसे कल्मश घृणा का, धोये फागुन मास ।।
फागुन का होता सदा, एक अनोखा रंग ।
सब मस्ती में झूमते, बिन दारू बिन भंग ।।
भौंरे ने किस ढंग से, पूछा सबका हाल ।
सरसों पीली पड़ गयी, ढाक हो गया लाल ।।
जाने कैसा कर दिया, फागुन ने परिहास ।
सेमल भी रक्तिम हुआ, दहका हुआ पलाश ।।
पादप तक बौरा गये, सुनि बसंत की टेर ।
यदि बाबा उन्मत्त हैं तो कैसी अंधेर ।।
महुआरी करने लगी, मधु-रस का संचार ।
अमराई बौरा गयी, देख बसंत बहार।।'

एक दिन एक कार्यक्रम में एक कथाकार मित्र श्री श्यामसुंदर निगम जी मिल गये. उन्होंने कहा, 'कहां फंसे हैं कविता में, वहां बस पॉलिटिक्स होती है. कहानी लेखन में आइए, आपको बिल्कुल अलग तरह का अनुभव होगा.' वह एक तरह से कहानी लिखने की बात कह गये. मैं कविता क्षेत्र की एक बात नहीं हज़म कर पा रहा था कि सामने तो

लोग पैर छूते हैं, दादा दादा करते हैं पर पीठ पीछे आपकी बुराई करते हैं, गालियां देते हैं. निगम साहब का सुझाव मान कर मैंने गांव के परिवेश पर कहानी 'भूरा भाई' लिखी. मैंने अपनी पत्नी को दिखायी, उन्हें पसंद आयी. कुछ दिन बाद निगम साहब का कथागोष्ठी का निमंत्रण आ गया. मैं प्रेमी जी के साथ उनके आवास पर पहुंच गया.

उस दिन मेरे साथ एक वरिष्ठ कथाकार श्री श्रीनाथ जी का कथापाठ होना था. कानपुर के कथाकार, रंगकर्मी तथा कुछ अन्य साहित्यकार मौजूद थे, संचालन कर रहे थे वरिष्ठ कहानीकार श्री राजकुमार सिंह. उन्होंने मेरा ही पहले कथापाठ करवा दिया. यह मेरा पहला कथापाठ था इसलिए थोड़ी घबराहट ज़रूर थी. पर कथापाठ ठीक-ठाक हो गया, संचालन में राजकुमार जी बहुत आक्रामक रहे. किसी ने कहा भी कि यह इनका पहला कथापाठ का अवसर है. पर मैंने उनसे कहा कि सहूलियत देने की कोई ज़रूरत नहीं है आप अपने हिसाब से संचालन कीजिए. मेरी कहानी का उन्होंने भरपूर पोस्टमार्टम किया. कहानी गांव के परिवेश की थी पर उन्हें उसमें गांव दिख ही नहीं रहा था. जब प्रेमी जी का बोलने का अवसर आया तो उन्होंने सबको आड़े हाथ लिया. उनकी बातों का किसी के पास कोई जवाब नहीं था.

मुझे निगम साहब ने पहले ही बता दिया था कि कथागोष्ठी में ख़ूब खिंचाई होती है. मैं उसके लिए तैयार भी था पर अपने को गांव का होने का दम भरने वालों को गांव नहीं दिखा, जब कि गांव पूरी शिद्दत से कहानी में मौजूद था.

घर पहुंचने पर वाइफ़ ने पूछा, कैसा रहा कथा पाठ? मैंने उन्हें पूरी बात बतायी तो उन्होंने कहा वे लोग कौन–सा चश्मा लगाये थे कि उन्हें कहानी में गांव नहीं दिखा — यह तो लगा ही रहेगा अब आप ऐसी कहानी लिखिए कि इन लोगों के मुंह बंद हो जायें.

क़रीब दो महीने में एक कहानी तैयार हुई, 'नटिन भौजी.' वह कहानी मैंने पत्नी को तथा शतदल को दिखायी दोनों लोगों ने पसंद की, मैंने वह कहानी दैनिक जागरण में छपने के लिए भेज दी. कहानी छपी, वह मेरी उम्मीद से ज़्यादा लोगों ने पसंद की. मेरा प्रसन्न होना स्वाभाविक था. इस कहानी की सफलता ने मुझे कहानीकार बना दिया. इसके बाद मेरा कहानी लिखने का सिलसिला चल निकला. कहानियां मधुमती, अक्षरपर्व, लोकगंगा, पुष्करणी, लमही, आजकल इत्यादि पत्रिकाओं में छपने लगीं जिससे मेरा काफ़ी उत्साहवर्धन हुआ. उसी का प्रतिफलन मेरे दो कथा संग्रह 'मेरे गांव का किंग एडवर्ड' और 'मंडी' हैं तीसरे संग्रह की तैयारी चल रही है.

आज यह आत्मवृतांत लिखते हुए मेरी अतीत की यात्रा ने गांव, बचपन, मेरे पिता जी का संघर्ष, ज़मीदारी के अत्याचारों से तथा उन परिवारजनों से जो अब नहीं हैं से मिलवाया, सुखद क्षणों ने पुलकाया, वहीं दुःखद क्षणों ने ख़ूब रुलाया भी.

१८०/१२ एन. एल. सी. कॉलोनी,
किदवईनगर, कानपुर-२०८०२३
मो. : ९४५१५४७०४२

लघुकथा

ज़मा खाता

डॉ. वी. गोविंद शेनॉय

दमदू बस स्टॉप में चिथड़े की गठरी थामे बैठा हुआ था. भिखमंगा था. आधी रात होने को थी. रात वहीं बितानी थी. सड़क के उस पार एक कार धम्म से आ रुकी. चालक भद्रपुरुष ने कार चलाने का श्रम किया बार-बार. इंज़िन मात्र शोर मचाता रहा. कार टस से मस नहीं हुई. भद्रपुरुष कार से बाहर निकल आया, चारों ओर नज़र दौडायी. मदद की चाह थी. कार में बीमार मां बैठी थी. उन्हें अस्पताल पहुंचाना था. दमदू एकदम उस ओर गया. भद्रपुरुष कार में जा बैठे. इंजिन से ज़ोरदार शब्द हुआ. दमदू ने पीछे से धक्का दिया और कार चलने को हुई. भद्रपुरुष ने कृतज्ञ हो उसे कुछ देना चाहा जो उसने स्वीकार नहीं किया. कार चल दी. दमदू बस स्टॉप आया. देखा, गठरी नदारद. रात के एकांत में बस स्टॉप में विचित्र-सी गठरी देख, गश्तवाली पुलिस आशंकित हो उठी और जांच के लिए थाने ले गयी. देखा, गठरी में नोट की गड्डी और चिल्लर. उधर दमदू ने शेष रात चिंता में गुज़ारी. प्रातःकाल संभला. अपने आप कहा, 'मांगने से जो मिलता है उसकी इति ऐसी ही होती है. कुछ और करना चाहिए.' शहर में भीख मांगना क़ानूनन दंडनीय था. उधर पुलिस अधिकारी ने अज्ञात अपराधी की अनधिकृत कमाई सरकारी खज़ाने में ज़मा की अपने ज़मा खाते में.

**'सौभाग्य', ओल्लूक्करा, त्रिचुर,
केरला-६८०६५५.**

सागर/सीपी

'आज के दौर का लेखक दार्शनिक नहीं होता!'

✍ मनहर चौहान

'कथाबिंब' के लिए लेखक एवं संपादक मनहर चौहान के साथ अशोक वशिष्ठ की बातचीत.

▸ आपके साहित्यिक जीवन का सफ़र कैसे शुरू हुआ?

मैं मूल रूप से गुजरात से हूं, लेकिन मेरी पढ़ाई हिंदी माध्यम में हुई. बचपन में ही उपन्यास और कहानियां पढ़ने का शौक़ लग गया. बचपन में ही लेखक बनने का पक्का इरादा भी बन गया था. उस समय ज़्यादातर प्रेम कहानियां लिखी जाती थीं जिनका अंत पहले से ही तय होता था. फ़ैसला किया कि प्रेम कहानी नहीं लिखूंगा. जीवन का पहला लेख 'कागज़ कैसे बनता है' लिखा जो इलाहाबाद से निकलने वाली राष्ट्रीय बाल-पत्रिका 'मनमोहन' में प्रकाशित हुआ. तब मैं कक्षा सातवीं का विद्यार्थी था. पारिश्रमिक के तौर पर पंद्रह रुपये मिले. कुछ और रुपये मिलाकर घर वालों के विरोध के बावजूद एक टाइप राइटर ख़रीद लिया. फिर तो मेरा लिखा हुआ इसी पत्रिका में नियमित प्रकाशित होने लगा.

मेरा मानना है कि कुछ गुण व्यक्ति में जन्म से ही साथ आते हैं. शायद मुझे भी जन्म से ही लेखक बनने का गुण प्राप्त था. गुजराती पत्रकार और लेखक विजय गुप्त मौर्य 'जन्मभूमि प्रवासी' के साहित्य संपादक थे. उनका एक वैज्ञानिक उपन्यास इस पत्रिका में धारावाहिक के रूप में प्रकाशित हुआ. स्वभाव से मैं विज्ञान प्रेमी हूं, सो इस उपन्यास का हिंदी अनुवाद मैंने किया और वह छपा. मेरी पहली कहानी 'कस्बे का जानवर' सरिता में प्रकाशित हुई. मैं तब कक्षा नौवीं का छात्र था.

▸ क्या आपको आरंभ में संघर्ष करना पड़ा?

पंद्रह वर्ष की आयु में रायपुर से इंटर आर्ट्स करने के बाद कॉलेज़ की आगे की पढ़ाई बीच में छोड़कर मैं दिल्ली चला गया. दिल्ली लेखकों का गढ़ हुआ करता था. लेखक बनने का भूत सवार था ही. शुरू में मैंने 'सरिता' के संपादकीय विभाग में नौकरी की. छः महीने के बाद वह नौकरी छोड़ दी और स्वतंत्र लेखन शुरू कर दिया. यह मेरे लिए अच्छी बात रही कि मेरा लिखा हुआ कभी किसी संपादक ने वापस नहीं किया. विजय गुप्त मौर्य के ही दो उपन्यासों का मेरा हिंदी अनुवाद 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में प्रकाशित हुआ. लेकिन दिल्ली में रहकर आर्थिक लाभ नहीं हुआ. एक रचना के केवल दस-पंद्रह रुपये मिला करते थे. पैसा भी ठहरता नहीं था.

एक और महत्वपूर्ण बात हुई कि दिल्ली में रहकर साहित्यिक गतिविधियों को क़रीब से देखने का अवसर मिला और जो देखा उससे साहित्यिक कल्पनाएं खंडित हुईं. साहित्य के क्षेत्र में ईर्ष्या और चालबाज़ी का बोलबाला था. गुटबाजी से रूबरू हुआ और दिल्ली से मोहभंग होने लगा. इस बीच दिल्ली में रहते हुए ही विवाह हो गया. चौदह वर्ष दिल्ली प्रवास के बाद तब की बंबई आ पहुंचा.

▸ अपनी शिक्षा को अधूरी छोड़ने का कभी कोई मलाल हुआ ?

नहीं बिलकुल नहीं. आगे पढ़ाई होती तो नौकरी करता जो मुझे करनी नहीं थी. लेखक बनने का निश्चय तो बचपन में ही हो गया था. पढ़ाई जो एक बार छोड़ी तो फिर पीछे मुड़कर नहीं देखा.

▸ मनहरजी, साठ-सत्तर के दशकों में देश में साहित्यिक परिदृश्य कैसा था?

उस वक़्त कहानीकार समझिए 'हीरो' हुआ करता था और कवि मंच का शहंशाह. अच्छे कवियों पर काव्य प्रेमी जान छिड़कते थे. कहानीकारों में कमलेश्वर, मोहन राकेश और राजेंद्र यादव की तिकड़ी जमी हुई थी और इधर काव्य मंच पर बाल स्वरूप राही, रामानंद दोशी, नीरज जी छाये हुए थे. उस समय शुद्ध साहित्य का बोलबाला था. आज उल्टा हो रहा है. साहित्य का स्थान गौण हो गया है. अब तो लटके-झटके, गायकी और अभिनय काव्य-मंचों पर अपना स्थान बना चुके हैं. कविता के नाम पर हास्य परोसा जा रहा है वह भी शुद्ध हास्य नहीं. मैं तो कहूंगा कि उस

ज़माने में जितने पान वाले हुआ करते थे उतने अब कवि होते हैं.

▶ आपने अनुवादक के रूप में बहुत काम किया है. अपना अनुभव बताएं.

देखिए वशिष्ठ जी, अनुवादक का स्वभाव इस बात से समझ आता है कि उसने अनुवाद करने के लिए कैसी कृति का चयन किया है. मैं विज्ञान प्रेमी हूं यद्यपि मैं प्रेम और कोमल भावनाओं का विरोधी नहीं हूं. मैंने ज़्यादातर गुजराती रचनाओं का हिंदी में अनुवाद किया. बहुत कुछ सीखा और बहुत काम किया. मेरे ज़माने में 'माया', 'मनोरमा', 'मनोहर कहानियां' जैसी पत्रिकाओं के संपादकीय विभाग में एक सज्जन हुआ करते थे 'हरि दयाल चतुर्वेदी'. वे पूरी पत्रिका का अनुवाद किया करते थे. मैंने वैसा अनुवादक आज तक नहीं देखा और आज तो मुझे कोई विशिष्ट अनुवादक नज़र ही नहीं आता.

▶ हिंदी की बहुत सी पत्रिकाओं का प्रकाशन बंद हो गया है. आपको कैसा लगता है?

बहुत बड़ा शून्य नज़र आता है. आज एक तो पत्रिकाओं का पारिवारिक स्वरूप ख़त्म हो गया है. दूसरे ऐसा लगता है कि सारा साहित्य जैसे एक लड़का और एक लड़की की कहानी तक ही सीमित हो गया है. साहित्य तो प्रेमचंद और देवकीनंदन खत्री देकर गये हैं, समाज को. हम प्रेमचंद से आगे बढ़ ही नहीं पाये. प्रेमचंद ने कितनी ही श्रेष्ठ कहानियां लिखीं जिनके केंद्र में कोई नारी नहीं थी. प्रेमचंद नारी विरोधी नहीं थे. उनका लेखन समाज केंद्रित था. वे पारिवारिक कहानियां लिखते थे.

पत्रिकाएं पाठक के दम पर चलती हैं. ऐसा नहीं है कि आज हिंदी पत्रिकाओं के पाठकों की कमी हो गयी है. आज भी बहुत लोग पत्रिकाएं पढ़ना चाहते हैं. पहले पत्रिका की बिक्री का एज़ेंट स्वयं पाठक हुआ करता था. आज व्यावसायिक व्यक्ति एज़ेंट बन बैठा है. वह अख़बारी एज़ेंट है. उसे केवल 'सेल' से मतलब है. वास्तव में पत्रिकाओं के प्रकाशन में सांस्कृतिक और सामाजिक ज़िम्मेदारी नहीं समझी गयी. कोरी व्यावसायिकता ले डूबी पत्रिकाओं को. देखिए न इसके चलते धर्मयुग, सारिका, दिनमान, माधुरी, ज्ञानोदय, पराग जैसी पत्रिकाएं एक साथ बंद हो गयीं.

कुछ और कारण हैं कि पत्रिकाएं चल नहीं

मनहर चौहान

जन्म : १० अगस्त १९३९
भाटापारा, रायपुर (छ. ग.)
शिक्षा : इंटर-आर्ट्स, सागर वि. वि. (म. प्र.)

: लेखन :

१३ वर्ष की आयु में पहली कहानी बाल-पत्रिका 'मनमोहन' में प्रकाशित. तबसे ही निरंतर लेखन. मैट्रिक की परीक्षा के बाद 'टूटा व्यक्तित्व' प्रथम मौलिक उपन्यास लिखा, जो 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' में धारावाहिक प्रकाशित हुआ. लेखक बनने की धुन में कॉलेज की पढ़ाई अधूरी छोड़कर रायपुर से दिल्ली प्रयाण. 'सरिता' के संपादकीय विभाग में पहली नौकरी. यहीं से पत्रकारिता का प्रारंभिक प्रशिक्षण प्राप्त. छह मास में नौकरी छोड़कर स्वतंत्र लेखन. दिल्ली के लगभग १५ वर्ष के निवास के दौरान कई मौलिक उपन्यासों व किशोर-उपन्यासों का सृजन. जिनका 'धर्मयुग', 'सा. हिंदुस्तान', 'मनोरमा' में धारावाहिक प्रकाशन. जैसे : 'हिरना सांवरी', 'सूर्य का रक्त', 'कोई एक घर', 'जादूई खड़िया'.

: कुछ अन्य उपन्यास :

'सीमाएं' (५७२ पृष्ठ), 'अरे, ओमप्रकाश!', 'वध', 'चतुर-चतुर नाना' (किशोर उपन्यास). १६ कड़ियों की किशोर-उपन्यास माला 'अंग्रेज़ आये और गये', 'घरघुसरा' लंबी कहानी को 'सारिका' द्वारा आयोजित प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार (१९६३).

इसके साथ ही गुजराती में हिंदी के अनुवादक के रूप में सक्रियता. राष्ट्रीय स्तर की प्रमुख पत्रिकाओं में कहानियों, वैज्ञानिक लेखों, अनुवादों का निरंतर प्रकाशन.

दिल्ली में भारतीय टेलीविजन की शुरुआत के साथ सक्रिय भागीदारी. प्रमुख लेखकों में गणना. टीवी नाट्य-रुपांतर व मिनी-धारावाहिक लेखन. दिल्ली रेडियो के लिए भी मौलिक एवं रुपांतरित नाटक तैयार किये. दिल्ली के १५ वर्षों के निवास के बाद मुंबई की ओर रुख़. मुंबई में १८ वर्षों तक 'शब्द सिंडीकेट' का संचालन. साथ ही फ़िल्म और टेलीविज़न से जुड़ाव. नाट्य-निर्देशन एवं निर्माण, स्वतंत्र लेखन तथा पत्रिका संपादन-प्रकाशन.

: सम्मान :

म. प्र. साहित्य परिषद का रविशंकर शुक्ल पुरस्कार (७५-७६), श्रेष्ठ किशोर-उपन्यास पुरस्कार (उ.प्र. हिंदी संस्थान ७६-७७), हिंदीतर भाषी हिंदी साहित्यकार पुरस्कार (शिक्षा व समाज-कल्याण मंत्रालय एवं ७६-७७, शिक्षा व संस्कृति मंत्रालय (८१-८३). जीवन गौरव पुरस्कार (लाइफ टाइम एचीवमेंट अवार्ड २०१३), समाज गौरव सम्मान (२०१४) व सृजन-गाथा सम्मान.

: संपर्क :

बी-१६४, सीता सदन, सम्मुख : देवनगर, पोयसर डिपो के पीछे,
कांदिवली (पश्चिम), मुंबई - ४०००६७.
मो. : ९८१९८७८७७५/९३२३८७८७११
ई-मेल : manharchowhan@gmail.com

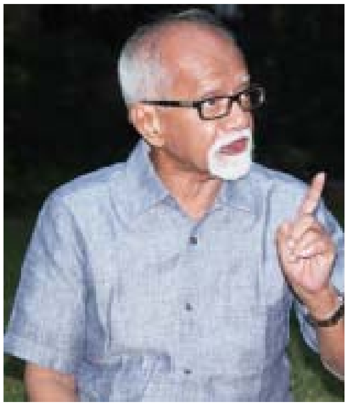

मनहर चौहान

अशोक वशिष्ठ

पातीं. हमें मार्केटिंग करना नहीं आता. हम जैसे ही लोकप्रियता की बात करते हैं असाहित्यिक हो जाते हैं. कोई पायलट, कोई प्रधानमंत्री लेखक नहीं बन पाता.

▶ अपने उपन्यास 'अंग्रेज़ आये और गये' के बारे में कुछ बताएं.

मेरा यह उपन्यास भारत में अंग्रेज़ी शासनकाल का ऐतिहासिक और सामाजिक दस्तावेज़ कहा जा सकता है. यह उपन्यास समझिए कि सोलह उपन्यासों की एक सीरीज़ है. इसे किशोर उपन्यास कहा जा सकता है. इनमें अंग्रेज़ों के भारत आगमन से लेकर उनके भारत छोड़कर जाने तक की भारत की तत्कालीन सामाजिक और ऐतिहासिक परिस्थितियों का पूरा लेखा-जोखा है. यह भी कहा जा सकता है कि यह उपन्यास सीरीज़ अंग्रेज़ी शासन का इतिहास है जो स्क्रीन प्ले की तरह लिखा गया है. कैसे भारत पर अंग्रेज़ों ने अत्याचार किये, कैसे भारतीयों को कुचला गया, सामाजिक ताना-बाना नष्ट किया यह सब सिलसिलेबार उल्लेखित है, इसमें. प्रत्येक खंड अपने आप में एक पूर्ण उपन्यास है जो स्वतंत्र रूप से पढ़ा जा सकता है.

इस उपन्यास सीरीज़ के सोलह खंडों में से तेरह खंडों का प्रकाशन 'नेशनल पब्लिशिंग हॉउस' ने किया. मुझे अफ़सोस है कि बाद के तीन खंडों का प्रकाशन नहीं हो पाया. इस सीरीज़ का एक उपन्यास है जो 'नाना फडनवीस' पर लिखा गया है. इस खंड को 'चतुर-चतुर नाना' शीर्षक से यू. के. के 'पेंग्विन बुक्स' ने भी प्रकाशित किया था.

▶ आपने 'इकाई', 'भेदभरी' और 'दमख़म' इन तीन पत्रिकाओं का संपादन और प्रकाशन किया. इनके बारे में हमें बताइए.

देखिए वशिष्ठ जी, ये तीनों पत्रिकाएं एकदम भिन्न हैं. मेरी पहली पत्रिका 'इकाई' बिलकुल 'ज्ञानोदय' जैसी पत्रिका थी, साहित्य से सरोकार रखने वाली पत्रिका. लेकिन प्रकाशक के रूप में मेरा अनुभव न होने के कारण यह पत्रिका शीघ्र ही बंद हो गयी.

दूसरी पत्रिका 'भेदभरी' भी साहित्यिक पत्रिका थी जिसमें कहानियां, उपन्यास-अंश, शिकारियों की कहानियां, विज्ञान-कथाएं, बंगाल की पृष्ठभूमि की कहानियां इसमें छपती थीं. कई विशेषांक भी छपे. लेकिन इस पत्रिका को लोगों ने असाहित्यिक घोषित कर दिया और यह पत्रिका पंद्रहवें अंक पर आकर बंद हो गयी.

इसके बाद मैंने वर्ष २००८ में 'दमख़म' पत्रिका का संपादन और प्रकाशन शुरू किया, मासिक पत्रिका के तौर पर. इस पत्रिका के प्रकाशन को आठ वर्ष पूरे हो गये हैं. बहुत संघर्ष करना पड़ता है पत्रिका के प्रकाशन में. वैसा ही कष्ट होता है जैसा सीज़ेरियन से बच्चे के जन्म में मां को कष्ट होता है. मैं यह पूरा ध्यान रख रहा हूं कि यह पत्रिका साहित्यिक पैमाने पर खरी बनी रहे. भले ही यह पत्रिका आज घाटा दे रही है फिर भी मैं हृदय से चाहता हूं कि यह चले. मुझे उम्मीद है कि कुछ समय बाद मैं इस पत्रिका के घाटे से उबर सकूंगा. इस पत्रिका को नियमित चलाऊंगा, यह मेरा पक्का इरादा है.

▶ एक अच्छी साहित्यिक पत्रिका के संपादन और प्रकाशन की निरंतरता बनाये रखना आज कितना चुनौतीपूर्ण कार्य है?

देखिए, पत्रिका का प्रकाशन एक सतत प्रक्रिया है, वह भी ऐसी प्रक्रिया जिसमें हर एक क़दम पर चुनौती है, लेकिन प्रक्रिया तो ज़ारी रहनी चाहिए. बहुत से संपादक उत्साह में आकर पत्रिका शुरू तो कर देते हैं, लेकिन जैसे

ही पैसा ख़त्म हुआ या नुकसान होना शुरू हुआ कि पत्रिका बंद हो जाती है. ज़्यादातर पत्रिकाएं शैशव अवस्था में ही दम तोड़ देती हैं. हो यह रहा है कि पत्रिका चलने पर संपादक को तो पैसा मिलता है लेकिन लेखक को उसका उचित हिस्सा नहीं मिल पाता. यह मान लिया गया है कि लेखक का तो धर्म ही लिखना है, उसे पैसा नहीं लेना चाहिए. हर स्तर पर सब कुछ उल्टा हो रहा है.

▸ अक़्सर यह कहा जाता है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है, आज के दौर में यह कथन कितना सही है?

आपने बहुत अच्छा प्रश्न उठाया है. समाज आज बड़ी तेज़ी से बदल रहा है. जैसे ही मोबाइल में कोई नया 'ऐप' आया कि समाज में बदलाव शुरू हो जाता है. आज मानवीय संबंध बदल रहे हैं, प्रेम करने और धोखा देने का स्वरूप बदल रहा है. तो इतनी तेज़ी से बदल रहे समाज का प्रतिबिंब साहित्य बन सके, इतना वक़्त ही कहां है साहित्य के पास? डेढ़ साल में एक उपन्यास छपकर जब बाज़ार में आता है तब तक समाज बदल चुका होता है. न तो लेखक वह लिख पाता है जो समाज को चाहिए और न प्रकाशक को बेचना आता है. लेखक को छपास का रोग लग गया है और प्रकाशक को लाभ कमाने का, तो आज कुछ भी छप रहा है. मैं तो कहूंगा कि आज साहित्य के नाम पर 'पल्प' छपकर बाहर आ रहा है. साहित्य के लिए यह चुनौती नहीं द्रवित होने वाली स्थिति है.

▸ ऐसा माना जाता है कि लेखक और कवि विचारक होते हैं और समाज को दिशा देते हैं, आपका क्या कहना है?

लेखक और कवि से यह उम्मीद की जाती है कि वह समाज और राष्ट्र को दिशा दे. यह एक आदर्श स्थिति है. लेकिन हमें यह स्वीकार करना होगा कि आज परिस्थितियां बदल गयी हैं. आज के दौर का लेखक दार्शनिक नहीं होता. आज लेखक के सामने ऐसी स्थिति नहीं है कि वह दार्शनिक बन सके. पूरा समाज भोग के पीछे भाग रहा है. लेखक भी इस दौड़ में शामिल है. आज का सिद्धांत यह बन गया है कि बेचो और भोग करो.

▸ पिछले दिनों देश में असहिष्णुता को मुद्दा बनाकर बहुत से साहित्यिकारों और विचारकों ने सरकारी सम्मान और पुरस्कार वापस किये. आपकी प्रतिक्रिया!

मैं इसे केवल और केवल नौटंकी मानता हूं. देखिए इस तरह के सम्मान और पुरस्कार केवल सौदेबाज़ी होती है. पुरस्कार या सम्मान देते समय आपके साहित्य की क़ीमत इक्यावन हज़ार या कुछ लाख आंकी गयी. आपने सम्मान तो वापस किया लेकिन आपने राशि वापस नहीं की. की भी तो कितनों ने? यह सब राजनीतिक आकाओं के इशारे पर की गयी नौटंकी थी और कुछ नहीं.

▸ भविष्य के लिए आपकी साहित्यिक योजना?

इस समय तो मेरा एक ही मक़सद है अपनी पत्रिका 'दमख़म' को पारिवारिक और लोकप्रिय पत्रिका बनने के मुकाम तक पहुंचाना. यह पत्रिका धर्मयुग की तरह सफल होकर घर-घर पहुंचना चाहती है. अब मैं पत्रिका के संचालन को साहित्यकार के रूप में न लेकर पत्रकारिता और प्रकाशक के रूप में ले रहा हूं.

▸ उभरते कवियों और लेखकों को आपकी राय अथवा कोई संदेश.

लेखक और कवि को अपने कार्य के प्रति ईमानदार और उत्तरदायी होना पड़ेगा. नया लेखन करना होगा. मुझे अफ़सोस है कि हमारे कवि अब तक एक गीत हिंदी में ऐसा नहीं लिख पाये जो बच्चे के जन्मदिन के अवसर पर गाया जा सके. एक बाल गीत ऐसा नहीं लिख पाये जो राष्ट्रीय स्तर पर गाया जा सके. नये लेखक और कवि यह चुनौती स्वीकार करें. पाठकों की नस पकड़ने की कला सीखनी होगी. लेखन में रोचकता बनाये रखनी होगी. साहित्य, कहानी या उपन्यास के नाम पर गरिष्ठ दार्शनिकता की बातें कोई नहीं पढ़ेगा. नये लेखकों को यह समझना होगा कि आज कहानी उपन्यास पर हावी है. पद्य का भविष्य मुझे अच्छा नज़र आता है. इसलिए कवि की ज़िम्मेदारी भी ज़्यादा है. कवि और लेखक केवल मनोरंजन की सामग्री न लिखें बल्कि ऐसा लिखें जो समाज को सोचने को मज़बूर करे. ऐसा लिखें जो समाज से सरोकार रखता हो.

बी-१६४, सीता सदन, पोयसर डिपो के पीछे, कांदिवली (प.), मुंबई-४०००६७.
मो. : ९८१९८७८७७५, ९३२३८७८७११
E-mail : manharchowhan@gmail.com

अशोक वशिष्ठ
सी-६०३; सागर रेसीडेंसी
प्लॉट ९८, ९९; नेरूल (पूर्व)
नवी मुंबई-४००७०६
मो.: ९८६९३३७६१८

'आंडाल' : सर्वहृदय शासिका

✍ डॉ. राजम पिल्लै

तमिलनाडु का श्रीरंगम देवस्थान! समीप ही था गांव — श्रीविल्लिपुत्तूर और वहां था भगवान विष्णु का, श्री रंगनाथ स्वामी का एक मंदिर! भक्त विष्णुचित्त भगवान की पूजा के लिए सुंदर-सुगंधित, नव-विकसित पुष्पों को चुन-चुनकर मनोहारी मालाएं बनाया करते. उन पुष्पों के साथ ही गुंथी होती उनकी आस्था, श्रद्धा, शरणागति — भाव! विष्णुचित्त ने अपने हाथों एक पुष्पवाटिका बनायी थी, भक्ति के जल से सींचकर, भावना के उर्वरक से विकसित कर! पुष्पवाटिका से पुष्प चुनकर सूर्योदय काल में ही माला बनाकर भगवान रंगनाथ के मंदिर में दे आना उनका नित्यकर्म था, दिनचर्या थी!

एक दिन सूर्योदय-काल में पुष्प-चयन करते-करते विष्णुचित्त ने देखा — तुलसी-वृंदावन के पास पुष्प गुच्छ-सी खिली एक नन्ही, लगभग नवजात कन्या रखी हुई थी. विष्णुचित्त ने स्नेह से, करुणा से, ममता से बच्ची को उठा लिया; निस्संतान थे वे, यही मान लिया कि भगवान रंगनाथ ने एक बच्ची के रूप में 'पुष्पगुच्छ' ही उन्हें प्रसाद में दे दिया है, बच्ची का नाम उन्होंने रखा 'कोदै' — पुष्पगुच्छ!

विष्णुचित्त – 'पेरियालवार' :

प्राचीन तमिलनाडु में संभवत: ईसा की चौथी-पांचवीं शताब्दी से नौवीं शताब्दी तक का काल वैष्णव भक्ति के प्रसार का काल रहा और उसमें से बारह प्रमुख भक्तों को 'आलवार', यानी गहन अवगाहन करने वाले या 'शासन करनेवाले' का विरुद प्राप्त था. विष्णुचित्त को उसमें विशेष रूप से 'पेरियालवार' - 'बड़े आलवार' माना-कहा जाता था. पेरियालवार भक्त थे, कवि थे — उनकी रचनाएं 'तिरुपल्लांडु' और 'पेरियालवार तिरुमोली' में संग्रहीत हैं. कृष्ण की बाल-लीलाओं को उन्होंने यशोदा की दृष्टि से निहारा, अंकित किया; वात्सल्य-रस की अनूठी अभिव्यक्ति उनके पदों में हुई.

ऐसे विष्णुचित्त 'पेरियालवार' की पोषिता-पुत्री बनी 'कोदै.'

बालिका - किशोरी कोदै :

कोदै को मिला, पालक-अभिभावक पिता का शब्द, नाद, भक्ति का उत्तराधिकार! पता नहीं कब, वह स्वयं पुष्प-मालाएं बनाने लगी, स्वर-मालाएं गूंथने लगी और पिता ने जिस विष्णु भगवान को — रंगनाथ स्वामी को — यशोदा बनकर वात्सल्य दिया था उन्हीं को कोदै ने अपना सखा, जीवन-साथी, पति मानना प्रारंभ कर दिया. किशोरी कोदै प्रेम-रसपूर्ण गीत गुनगुनाती और अपने द्वारा गूंथी हुई मालाओं को स्वयं धारणकर पहले यह परख लेती कि क्या वे भगवान रंगनाथ स्वामी के उपयुक्त हैं? क्या ये मालाएं उन्हें प्रिय लगेंगी? क्या वे उन्हें सप्रेम स्वीकार करेंगे? वह स्वयं संतुष्ट हो जाती तभी उन मालाओं को उन टोकरियों में रखती जिन्हें लेकर पिता विष्णुचित्त भगवान के मंदिर में जाते और वहां वे भगवान को चढ़ायी जातीं. कोदै को यह पता ही नहीं था कि मानव द्वारा धारण किया हुआ पुष्प-माल 'निर्माल्य' हो जाता है और उस उतरी हुई माला को भगवान पर नहीं चढ़ाया जाता. ऐसा करना दोष है, पाप है, वर्जनीय है, दंडनीय है.

एक दिन पिता ने संयोग से यह दृश्य देख लिया. वे भय से थरथराने लगे. 'पापम् शांतम्, पापम् शांतम् ।' कोदै से पूछा तो पता चला कि वह तो प्राय: नित्य ही ऐसा करती है. विष्णुचित्त जड़-मूक हो गये. कोदै द्वारा पहनकर उतारी

गयी माला को वे कई दिनों से मंदिर में ले जा रहे हैं और भगवान रंगस्वामी को वे मालाएं पहनायी जा रही हैं. पूजन-अर्चन में विलंब न हो जाये इसलिए उन्होंने जल्दी-जल्दी नयी मालाएं बनायीं, मंदिर ले गये, भगवान को अर्पित करते-करते क्षमा-याचना करते रहे और मन ही मन इस बात के लिए तैयार हो गये कि इस पाप के लिए, कोदै की इस नादानी के लिए उन्हें जो भी प्रायश्चित करना पड़ेगा वे करेंगे.

डॉ. राजम पिल्लै

उस रात, भगवान रंगस्वामी ने अपने भक्त विष्णुचित्त को स्वप्न में दर्शन दिया. 'विष्णुचित्त! तुम तो 'आलवार' हो, भक्ति में गहन अवगाहन करनेवाले, शरणागति को सर्वोच्च पूजा माननेवाले भक्त! तुम्हीं को यह भ्रम कैसे हो गया? मुझे तो कोदै द्वारा स्वयं पहन-पहनकर उतारने के बाद मेरे लिए भेजी गयी मालाएं ही अधिक प्रिय हैं. नव-विकसित, अछूते फूलों की माला मुझे कल से मत पहनाना!''

इसे ईश्वराज्ञा मानते हुए विष्णुचित्त ने अगले दिन से कोदै को टोकना-रोकना बंद कर दिया. उनके लिए कोदै अब केवल एक पोषिता पुत्री नहीं रह गयी, भक्त-चूड़ामणि बन गयी.

कोदै का विवाह :

बिटिया का विवाह हर पिता के लिए चिंता का विषय होता है; विष्णुचित्त की चिंताएं तो सामान्य पिता से चौगुनी अधिक थीं. पोषिता ही सही, पर इकलौती पुत्री ! कैसा दैदीप्यमान सौंदर्य, कैसी काव्य रचना कुशलता, कैसा गायन-माधुर्य, कितनी छोटी उम्र में कितनी आध्यात्मिक ऊंचाई! इसके उपयुक्त पति कहां मिलेगा?

कोदै ने पिता की चिंता को भांप लिया. कोमल दृढ़ स्वर में कहा, ''अप्पा! मैंने अपने लिए पति का वरण कर लिया है. आप चिंता न करें.''

पिता ने पूछा, ''स्वयं वरण किया है? कौन है वह? कहां का है? उसका कुल-गोत्र क्या है?

कोदै, मुस्कुरा उठी! ''साक्षात रंगनाथ स्वामी को मैंने पति-रूप में वरण किया है. वे तो सर्वव्यापी हैं, सर्वस्वामी हैं, सर्वनियंता हैं.''

पेरियालवार ने कानों पर हाथ रख लिये. ''भगवान रंगनाथ स्वामी से तुम विवाह करोगी? कहां भगवान, कहां सामान्य मर्त्य-मनुष्य! ऐसा तो कभी न देखा न सुना. भगवान, स्वयं मार्ग दिखायेंगे मुझे, मेरी बुद्धि तो काम नहीं करती!''

कोदै-रंगनाथ स्वामी परिणय :

उस रात्रि को भगवान रंगनाथ स्वामी ने विष्णुचित्त को स्वप्न में दर्शन दिया. देवालय के पुजारी-पुरोहितों को भी दर्शन दिया. तत्कालीन पांड्य राजा श्री वल्लभदेव को भी दर्शन दिया और सबको निर्देश दिया कि वे कोदै से परिणय-बंधन में बंधेंगे. कोदै को वधू की तरह सोलह शृंगार कर, बड़े आदर-सम्मान के साथ पालकी में बिठाकर मंदिर में लाया जाये!

पालकी मंदिर द्वार पर रुकी. दिव्य सौंदर्यमयी कोदै वधू-वेष में सलज्ज मुस्कान के साथ पालकी से उतरी. पांड्य राजा वल्लभदेव, देवालय के पुजारी, पुरोहित, पिता विष्णुचित्त अभिभूत हो खड़े रहे; मंगलवाद्य बज उठे. वधू कोदै ने गर्भगृह में प्रवेश किया. शेष शायी भगवान रंगनाथ स्वामी को निहारा और स्वयं शेषशैया पर एक पत्नी के अधिकार के साथ, गरिमा के साथ आसीन हो गयी. अचानक ज्योति-सी चमकी, अग्नि-शिखा सी ऊर्ध्व प्रकाश-रेखा उठी और कोदै अंतर्ध्यान हो गयी. मंदिर के गर्भगृह के कपाट जैसे मुंद गये. लोगों की चौंधियाई आंखें जब खुलीं तब वहां केवल भगवान की मूर्ति थी, कोदै रंगनाथ स्वामी में तदाकार हो चुकी थी.

पिता विष्णुचित्त के आनंदाश्रु बह चले. 'आंडवन' (भगवान, शासक) ने कोदै (पुष्प-गुच्छ) का उपहार दिया, आज मेरी बेटी 'आंडाल (शासिका) हो गयी!''

'आंडाल' - सर्वहृदय शासिका :

तमिलनाडु में वैष्णव-भक्ति परंपरा में १२ भक्तों को 'आलवार' कहा जाता है. 'आंडाल' को आलवारों में गौरवमय स्थान प्राप्त है. तमिलनाडु के वैष्णव-मंदिरों में एक अनूठी परंपरा है, वहां भगवान के साथ-साथ भक्तों की भी पूजा की जाती है; मंदिरों में आलवार भक्तों की प्रतीक-प्रतिमाएं होती हैं; आलवार-आंडाल की प्रतिमा को वही गौरव, वही सम्मान प्रदान किया जाता है जो अन्य ग्यारह आलवारों को.

आंडाल की रचना-संपदा अत्यंत समृद्ध है. 'तिरुप्पावै' में ३० गेय पद हैं और पिछली चौदह सदियों में वे भक्तों,

सौंदर्यमयी कौदे (आंडाल) की चित्राकृति

कौदे का जन्मस्थल

गायकों, नृत्यकारों की प्रिय रचना रही है. आज भी वैष्णव-समुदाय में 'तिरुप्पावै' का गायन होता है; भरत-नाट्यम की विख्यात नृत्य कलाकार उन्हें भावाभिनय के साथ मंचित करती हैं.

आंडाल के भक्ति-गीतों का दूसरा संग्रह है - 'नाच्चियार तिरुमोलि' (नायिका के दिव्य-वचन), इसमें १४३ गीत हैं. नायिका द्वारा अपने प्रियतम को विरह-काल में भेजे गये मार्मिक छंद-बद्ध संदेश इसमें हैं. ऐसा लगता है कि आंडाल ने अपना भविष्य स्वयं ही निर्धारित कर लिया था, आख़िरकार भगवान रंगनाथ स्वामी का पति-रूप में वरण तो उसने स्वयं ही किया था. इस संग्रह के कुछ गीत आज भी वैष्णव परिवारों में गाये जाते हैं.

'आंडाल' अचानक एक दिन उद्भूत हुई और वैसे ही विलुप्त भी हो गयी लेकिन उसके भक्ति-गीत, उनका नाद-सौंदर्य आज भी आंडाल को, न केवल तमिलनाडु में वरन एक ज़माने के बृहत्तर तमिलभाषी देशों में मलाया, सिंगापुर, श्रीलंका आदि में और आज भी जहां-जहां तमिलभाषी हैं, भक्त हैं, संस्कृतिकर्मी हैं, 'सर्वहृदय शासिका' बनाता है.

पुष्पगुच्छ के कतिपय प्रश्न-कांटे :

बड़े मुखर रूप से तो नहीं लेकिन हल्की सुगबुगाहट के रूप में, कभी किसी सेमिनार में, कभी किसी एम. फ़िल. डिग्री के शोध प्रबंध में, किसी 'स्त्रीवादी' समीक्षक, द्वारा यह पूछा जाता है कि क्या कोदै-आंडाल का 'स्वयं-वर' उसकी सामाजिक स्थिति की परिणति नहीं था? उसके पालक पिता ब्राह्मण थे पर वह तो 'अज्ञात-कुल शील' स्रोत से प्राप्त हुई थी. वर्ण-व्यवस्था से संपूर्णतया परिचालित समाज में उस कन्या को किस जाति, किसी वर्ण का पति मिलता? क्या उस बच्ची ने मनोवैज्ञानिक शब्दों में अपने लिए एक वैकल्पिक वायवी संसार बुनकर, अपनी अस्मिता को टूटने से बचाने के लिए भगवान को 'पति-स्वामी' मानकर उनका वरण नहीं किया?

आज का प्रश्नाकुल स्त्री-समाज यह भी पूछने लगा है कि हमारी पुरा-कथाओं में महीयसी महिलाएं ही इस प्रकार तिरोहित क्यों हो जाती हैं? राजा-पुरोहित-राज्यमंत्री क्यों नहीं तिरोहित होते? सीता, राजा जनक को हल चलाते समय भूमि में पड़ी रखी मिली और अंत में अपनी भू-माता से ही उसने शरण मांगी और सबके देखते-देखते भूमिगत हो गयी. द्रौपदी, यज्ञ-स्थली में पायी गयी और अंत में हिमालय में हिम-खंडों के बीच धराशायी हो गयी. उसकी मृत्यु का साक्षी कोई नहीं था. पांच में से एक पति भी नहीं. राजरानी मीरा, द्वारिकाधीश की मूर्ति में समा गयी, मंदिर में उपस्थित जन देखते रह गये...

पिछली सदियों में ये प्रश्न पूछे नहीं गये. इस सदी में पूछे जा रहे हैं पर वे अभी अनुत्तरित हैं.

६०१–ए, रामकुंज को. हॉ. सो.,
रा. के. वैद्य रोड, दादर (प.),
मुंबई-४०००२८.
मो.:९८२०२२९५६५.
ई-मेल : ravindra.pillai@gmail.com

ग़ज़ल

✍ **राजेंद्र तिवारी**

अकेला जंग में था ख़ुद को लश्कर कर लिया मैंने।
ग़ज़ब था हौसला भी, मोर्चा सर कर लिया मैंने।
जब आईना था लोगों को बड़ी तकलीफ़ होती थी,
इसी से दिल के आईने को पत्थर कर लिया मैंने।
किसी का क़द घटाने में लगा रहता तो क्या होता,
जो अपना क़द बढ़ाया उससे बेहतर कर लिया मैंने।
ये नासमझी कहो, फ़ितरत कहो, ग़लती कहो दिल की
न करना था भरोसा जिस पे, अक्सर कर लिया मैंने।
बिछुड़ कर तुझसे दिल 'राजेंद्र' खंडहर सा अकेला था,
बसा कर तेरी यादों को, उसे घर कर लिया मैंने।

तपोवन, ३८-बी, गोविंद नगर,
कानपुर. मो.९३६९८१०४११.

ग़ज़ल

✍ **सच्चिदानंद 'इंसान'**

दर्द की जब वो दवा देते हैं,
और भी दर्द बढ़ा देते हैं.
जब सवालों से घिरे होते वो,
जुल्म को आम बना देते हैं.
जुल्म को जुल्म जब हम कहते हैं,
घर हमारा वो जला देते हैं.
कैसे मुंसिफ़ हैं आप तो कहिए,
बेगुनाहों को सज़ा देते हैं.
बेजबां की हंसी पे क्यों इंसां,
साजिशें कर वो रुला देते हैं.

जी.पी.वर्मा लेन,
सहारा मिशन स्कूल, मुंदीचक,
भागलपुर-८१२००१.(बिहार)

(पिछले अंक में यह ग़ज़ल किसी भिन्न ग़ज़लगों के नाम से छप गयी थी. पाठक कृपया सुधार लें. - सं.)

रचनाकारों से निवेदन

''**कथाबिंब**'' एक कथाप्रधान पत्रिका है, कहानी के अलावा लघुकथाएं, कविता, गीत, ग़ज़लों का भी हम स्वागत करते हैं. कृपया पत्रिका के स्वभाव और स्तर के अनुरूप ही अपनी श्रेष्ठ रचनाएं प्रकाशनार्थ भेजें. साथ में यह भी उल्लेख करें कि विचारार्थ भेजी गयी रचना निर्णय आने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.

१. कृपया केवल अपनी अप्रकाशित और मौलिक रचनाएं ही भेजें. अनूदित रचना के साथ मूल लेखक की अनुमति आवश्यक है.

२. रचनाएं काग़ज़ के एक ओर अच्छी हस्तलिपि में हों या टंकित हों. रचनाओं की प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें. वापसी के लिए स्व-पता लिखा, टिकट लगा लिफ़ाफ़ा व एक पोस्ट कार्ड अवश्य साथ रखें, अन्यथा रचना संबंधी किसी भी प्रकार का पत्राचार करना संभव नहीं होगा. रचना के साथ कवरिंग लेटर का होना आवश्यक है. अन्यथा रचना पर विचार करना संभव नहीं होगा.

३. सामान्यत: प्रकाशनार्थ आयी कहानियों पर एक माह के भीतर निर्णय ले लिया जाता है. अन्य रचनाओं की स्वीकृति की अवधि दो से तीन माह हो सकती है. कहानियों के अलावा चयन की सुविधा के लिए एक बार में कृपया एक से अधिक रचनाएं (लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल आदि) भेजें.

४. आप ई-मेल से भी कहानियां भेज सकते हैं. कृपया लघुकथा, कविता, गीत, ग़ज़ल आदि ई-मेल से न भेजें. ई-मेल का पता है : kathabimb@gmail.com रचना की ''डॉक'' फ़ाइल के साथ ''पीडीएफ'' फ़ाइल भी भेजें. साथ में यह घोषणा भी होनी चाहिए कि विचारार्थ भेजी रचना निर्णय की सूचना प्राप्त होने तक किसी अन्य पत्रिका में नहीं भेजी जायेगी.

जीवन की वास्तविकता की सशक्त अभिव्यक्ति

✍ डॉ. रूप सिंह चंदेल

'मंडी' (कहानी-संग्रह) – **जयराम सिंह गौर**
प्रकाशक : अनुभव प्रकाशन, ई-२८, लाजपत नगर, साहिबाबाद, गाजियाबाद-५, **मूल्य-** १५०/–

जब सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक आदि सरोकार किसी संवेदनशील व्यक्ति को उद्वेलित करते हैं, वह अपनी प्रतिक्रिया कला के किसी न किसी माध्यम से व्यक्त करने से अपने को रोक नहीं पाता. यह एक सत्य है कि हर व्यक्ति के अंदर एक कलाकार उपस्थित रहता है, जब भी उसे अवसर मिलता है वह प्रकट हो लेता है. लेकिन ऐसा सभी के साथ नहीं होता, होता उन्हीं के साथ है जो अति संवेदनशील होते हैं. एक सत्य यह भी है कि उम्र का किसी कालाकार से कोई सरोकार नहीं होता. ख़ासकर साहित्य की बात करें तो बहुत से रचनाकार चालीस पार कर जाने के बाद रचनात्मक क्षेत्र में आये और बहुत से चालीस तक चुक जाते रहे. वरिष्ठ कथाकार जयराम सिंह गौर उन कतिपय साहित्यकारों में हैं जिन्होंने जीवन के गहन अनुभव प्राप्त करने के पश्चात इस क्षेत्र में क़दम रखा, इसीलिए उनकी कहानियों से हाल में रू-ब–रू होने का मुझे अवसर मिला.

महानगर में रहकर भी गौर साहब आज भी गांव के व्यक्ति हैं. यह मैं नहीं उनकी कहानियां बताती हैं. वह घूम फिरकर गांव पहुंच जाते हैं. ग्राम्य जीवन, भाषा, संस्कृति, वातावरण जिस प्रकार उनकी कहानियों में प्रतिभाषित है वह उनके ग्राम्य प्रेम का द्योतक है. उनके पात्र इतने जीवंत हैं कि लगता है कि मैं उनसे कितनी ही बार मिल चुका हूं. वे मुझे अपने गांव के प्रतीत होते हैं. ऐसा नहीं कि गौर साहब केवल गांव के ही कथाकार हैं. महानगर में रहकर कोई उसकी विसंगतियों, विश्रृखंलताओं, विडंबनाओं से अछूता कैसे रह सकता है. लेकिन यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं कि महानगरीय जीवन को उद्घाटित करते हुए भी उनके अंदर गांव का कथाकार उन्हें बेचैन अवश्य करता रहता है. यह उनकी उन कुछ कहानियों में देखा जा सकता है, जो हैं तो शहर के वातावरण की लेकिन गांव भी वहां साथ चलता रहा है.

'मंडी' गौर साहब का दूसरा कहानी संग्रह है. इसमें तेरह कहानियां हैं. संग्रह की पहली कहानी, 'बुआ जू को कुंआं' अत्यधिक मार्मिक और उद्वेलित कर देने वाली कहानी है. भिंड–मुरैना ऐसे क्षेत्र हैं जहां किसी समय लड़कियों को जन्मते ही मार दिया जाता था. उन्हें पैदा होने के पश्चात ही या तो उनकी गर्दन खटोली के पावे के नीचे रखकर दबा दी जाती थी या उन्हें कुंए के हवाले कर दिया जाता था. कहानी का मुख्य पात्र अपनी बुआ के गांव जाता है. उसे यह पूर्व जानकारी है कि बुआ का एक ऐसा कुंआ है, जिसमें कभी लड़कियों को फेंका जाता था. वह उस कुंआ को देखना चाहता है, लेकिन बुआ का लड़का उसे दिखाने से बचता है. अंततः वह उसे देखने में सफल हो जाता है. बुआ और दूसरे पात्रों के माध्यम से स्थितियों का रोंगटे खड़े कर देने वाला विवरण गौर साहब ने प्रस्तुत किया है. कहानी में पात्रानुकूल भाषा का प्रयोग हुआ है, जो उस क्षेत्र विशेष में बोली जाती है. भाषा की इस दुरूह आंचलिकता के बावजूद कहानी की पठनीयता उसकी विशेषता है, जो आद्यंत अबाधित पढ़ने के लिए उत्साहित करती रहती है.

'मंडी' संग्रह की सर्वोत्कृष्ट कहानी है. साहित्यिक राजनीति, कवियों की मानसिक स्थिति आदि का जिस ख़ूबसूरती से लेखक ने वर्णन किया है वह अभूतपूर्व है. सब कुछ एक चल-चित्र की भांति आंखों के समक्ष घटित होता दिखायी देता है.

गौर साहब अद्भुत किस्सागो हैं. मैं नहीं जानता कि इसमें कितनी सचाई है, लेकिन ऐसा अनुभव करता हूं कि जो लेखक गांव से जुड़े हुए हैं या रहे हैं उनमें यह ख़ूबी पायी जाती है. नगरों, महानगरों और कस्बों से आये लेखको के पास भाषा की एक सीमा होती है, जबकि गांव के लेखक के पास ग्रामीण संस्कार और भाषा उसे अतिरिक्त समृद्धता

प्रदान करती है. 'चौराहा' एक ऐसी कहानी है, जो चौराहा को माध्यम बनाकर कही गयी है. निश्चित ही यह एक प्रतीकात्मक कहानी है. यह भी एक मार्मिक कहानी है, जो प्रेम प्रसंग को लेकर लिखी गयी है. यह कहानी हमें बताती है कि औरत सदा से औरत की दुश्मन रही है. यह एक अद्भुत कहानी है. 'वसीयत' भी कुर्सी को माध्यम बनाकर लिखी गयी एक प्रतीकात्मक कहानी है. एक कुर्सी की जीवन यात्रा का अद्भुत वर्णन गौर साहब ने किया है. कहानी का अंत लाजवाब है. उदाहरण : 'अब तुम मुझसे क्या चाहती हो?' मैंने पूछा.

'देखिए साहब बुरा न मानिएगा, जो पैदा होता है वह एक दिन मरता ज़रूर है, इसलिए मैं चाहती हूं कि आप मेरे लिए वसीयत कर दें.'

'वसीयत! कैसी वसीयत!'

'यही कि आपके न रहने के बाद मुझे भी आप के साथ चिता में रख दिया जाये.'

'इससे क्या होगा?'

'मैं बाद की इन तमाम ज़िल्लतों से तो बच जाऊंगी.'

'कुर्सी' का उपरोक्त कथन कहानी को हिंदी की एक उल्लेखनीय कहानी बनाता है.

'सामंजस्य' शंभू नामक व्यक्ति के जीवन की करुण गाथा है, जो अनमेल विवाह से जन्म लेती है. 'आख़िर मां हूं न, उसे शर्मिंदा कैसे देखती' कहानी एक मां के मातृत्व को व्याख्यायित करती है. 'अनुत्तरित' कहानी एक ऐसे पात्र को लेकर बुनी गयी है, जो कथावाचक का सीनियर था. अवकाश ग्रहण करने के पश्चात वह सीनियर प्रताप जी मार्क्सवादी संगठन से जुड़ जाते हैं. कथावाचक को भी मार्क्सवाद के विषय में बताकर उस संगठन से जुड़ने के लिए प्रेरित करते हैं. मुख्य पात्र की रुचि नहीं. उसके शब्दों में : 'इसका कारण तथाकथित मार्क्सवादी कार्यकर्ताओं का दोगला आचरण था. इनकी नीतियों ने समस्त देश की मिलों और अन्य कामकाजी संस्थानों की बखिया उधेड़ कर रख दी, जिसके परिणामस्वरूप भारत का मैनचेस्टर कहलाने वाला कानपुर एकदम वीरान हो गया.' एक उद्धरण और दृष्टव्य है – '... इस वाद की दुहाई देने वाले नेताओं की जीवन-शैली और करनी देख कर शायद ही इस वाद पर कोई भरोसा करेगा.' यह कथन इस विचारधारा पर प्रश्न चिन्ह खड़ा करने के लिए पर्याप्त है.

'स्टेटस' उस भारतीय मानसिकता को अभिव्यक्त करती है जहां व्यक्ति स्वयं को ही नहीं बल्कि बच्चों को भी पैसा कमाने की मशीन बना देना चाहता. एक पुत्र का मां के नाम पत्र, जो वह लंदन से लिखता है, इस बात को बख़ूबी बयान करता है. पिता जो पेशे से डॉक्टर है, बेटे की इच्छा के विरुद्ध पढ़ने के लिए लंदन भेज देता है. वहां बस चुकी मौसी के विषय में वह लड़का जिस साफ़गोई से बताता है कि अकूत धन की मालकिन मौसी किस प्रकार भारत की अपनी संपत्ति का पाई–पैसा हिसाब लगाती रहती है, जबकि यदि वह अपने उन ज़रूरतमंद रिश्तेदारों को वह दे दें तो उनका भी जीवन संवर जाये. कहानी बदलती भारतीय मानसिकता और छूटते संस्कारों को गहनता से उद्‌घाटित करती है. संग्रह की 'और उसने चूड़ियां पहन लीं', 'कसक', 'ख़ून का रिश्ता', 'मम्मी, प्लीज़...' और जुग जिये सो खेले फिर होरी' कहानियां भी उल्लेखनीय हैं.

अपने इस दूसरे संग्रह से ही गौर साहब ने जो छवि हिंदी कथा साहित्य में बनायी है वह इस बात की आश्वस्ति है कि भविष्य में उनकी उल्लेखनीय कहानियां हमें पढ़ने को मिलेंगी.

फ़्लैट ७०५, टॉवर-८, विपुल गार्डेन्स,
धारूहेड़ा, हरियाणा-१२३१०६
मो. : ८०५९९४८२३३

सराबों में सफ़र करते हुए

फ़ानी जोधपुरी

सराबों में सफ़र करते हुए (ग़ज़ल संग्रह) : **कृष्ण सुकुमार**
प्रकाशक : अयन प्रकाशन, १/२०, महरौली,
नयी दिल्ली-११००३०. मूल्य : २२०/-

निदा फ़ाज़ली अपने एक शेर में कहते हैं —

'जो खो जाता है मिलकर ज़िंदगी में,
ग़ज़ल है नाम उसका शाइरी में.'

गज़ल शाइरी की उस सिंफ का नाम है, जो सब से ज़्यादा मक़बूल हुई है. जिसे हर ज़ुबान ने अपनाया और सबसे ज़्यादा तब'अ आज़माइश ग़ज़ल में ही हुई. इसी सिंफ़ के एक क़लमकार का नाम है कृष्ण सुकुमार, जिनका

मज्मुआ-ए-ग़ज़ल 'सराबों में सफ़र करते हुए' मुझे अनमोल भाई के मार्फत मिला, जिसे मैंने हर्फ़ दर हर्फ़ पढ़ा तो पाया कि वाक़ई सुकुमार जी के लहजे में एक नयी तरह की ताज़गी है, जो बात तो सराब (मृगतृष्णा) की करती है मगर ये सराबों का सफ़र अंदर की तिश्नगी बुझा के क़ारी (पाठक) को सैराब (तृप्त) करती है. कृष्ण सुकुमार की शाइरी हिंदोस्तान की तहज़ीब की तर्जुमानी करती है, गंगा-जमुनी तहज़ीब का असर दिखता है इनकी शाइरी में. उन्हीं का एक शेर है —

'निरर्थक ज़िंदगी का सार्थक उन्वान कुछ तो है,
मेरे जीने का मक़सद है मेरी पहचान कुछ तो है.'

अदबी लोगों में शायद ये बहस हो कि सुकुमार हिंदी के शायर हैं या उर्दू के शाइर, मगर मेरी नज़र में वो ग़ज़ल के बेहतरीन शाइर हैं, जो उर्दू और हिंदी को एक ही प्लेटफ़ॉर्म पर ले आते हैं. सुकुमार की शाइरी बेशक हालात की ख़ुदा-दाद शाइरी है, उन्हें पढ़ के यकबारग़ी यही लगता है. इसी क़िताब के एक शेर में उन्होंने कहा है —

'ख़ुदा का शुक्र मैं गिरते हुए अपनी ज़मीं पर था,
बुलंदी से अगर गिरता तो चकनाचूर हो जाता.'

सुकुमार के एहसासात, तज़र्बात और मे'अयार की एक अलग ही ज़मीं है, जहां पे वो पैर जमाये मुस्तैदी से खड़े हैं. गिरने या चढ़ने से उन्हें कोई फ़र्क नहीं पड़ता और यही सोच उन्हें सूफ़ियाना टच भी देती है, जहां आकर ग़ज़ल शाइर की क़लम से अदा होके रौशनी की तरह फैल जाती है. सुकुमार जी की ग़ज़लें कभी उदास नहीं करतीं मगर कुछ सोचने पे मज़बूर ज़रूर करती हैं —

'मोहब्बत की मुझे दौलत मिली है,
सभी का उसमें से हिस्सा निकालूं.'

मैंने एक प्रोग्राम में कहा था कि शाइर के दिल में इतनी वुसअत (फैलाव) होती है कि सारी दुनिया भी अगर आ जाये तो भी जगह बच जाती है और ये बात सुकुमार जी की शाइरी में है जो क़ारी (पाठक) को 'ज्ञात से अज्ञात' की ओर ले जाती है. उनका एक शेर है —

'बहुत ही बदनुमा दुनिया में है तू,
तमाशा देख शाइर की नज़र से.'

वाक़ई सुकुमार अपने अशआर में बहुत कुछ दिखाते हैं मगर वो तमाशा नहीं होता बल्कि रंगीनियों से भरी दुनिया का तारीकियों से लबरेज़ चेहरा होता है. इन तारीकियों को देखने के बाद भी, हक़ीक़त का हलाहल पीने के बाद भी सुकुमार अपने अंदर की मासूमियत को बरक़रार रखने में कामयाब हैं. ज़माने के तेज़ाब ने उनकी शाइराना हस्ती को तेज़ाबी नहीं किया बल्कि और भी मासूम बना दिया है. इसी किताब में एक जगह वो कहते हैं —

'हमें जो अपना लगता है तो अपना मान लेते हैं,
हमारे देश में चंदा को मामा मान लेते हैं.'

सुकुमार की शाइरी में वतनपरस्ती भी दिखती है, ये वो शाइर है जो अपनी पोटली में जज़्बात, मोहब्बत और वतनपरस्ती को यकजां रखता है, मगर ऐसा भी नहीं कि शाइर को दौरे-हाज़िर से कोई शिकवा न हो, उन्होंने सियासत पे कई बार भरपूर तंज किया है. एक शेर में वो कहते हैं —

'मोहब्बत के मुख़ालिफ़ थे सियासत के दवाख़ाने,
मरीज़ों को दवा का काम ही बीमार रखना था.'

बहुत शिकवा है सुकुमार जी की ग़ज़लों को सियासत से और दौरे-हाज़िर के रस्मो-रिवाज़ों से और अगर है भी तो ग़लत कहां है? ओदबा (साहित्यकारों) का काम ही है मुआशरे को आईना दिखाना और सुकुमार ने अपना फ़र्ज निभाने में कहीं भी डंडी नहीं मारी.

मुझे एक बात और इस क़िताब में मुतआस्सिर करती है, वो ये कि इस पूरे मज्मुए में लफ़्ज़े दर्या का इस्तेमाल करते हुए कुल १४६ अशआर कहे गये हैं और हर बार अलग नोइय्यत (प्रकृति) देखी जा सकती है दर्या लफ़्ज़ की. ग़ौरतलब बात ये है कि मज्मुए का उन्वान है 'सराबों में सफ़र' और क़सरत से अशआर कहे गये हैं दर्या के हवाले से.

मेरा मानना है कि सुकुमार के क़लम की तासीर है ये कि वो सराबों (मृगतृष्णा) में से भी दरिया निकालने का फ़न बख़ूबी जानते हैं. मुझे यह कहने में कोई गुरेज़ नहीं है कि सुकुमार जाने कब से अपनी प्यास पर पानी को पाल रहे हैं या यूं कहूं कि प्यास को उसमें अयार तक ले जाते हैं कि हद्दे-तिश्नगी खुद ही दर्या बन जाती है और इसकी वज्ह ये है कि शायद सुकुमार ने हालात के जंगलों में सफ़र किया है और उसकी हक़ीक़त को समझा है, तभी वो कहते हैं —

'उठाने के लिए नुकसान तू तैयार कितना है,
तेरा झुकना बताता है कि तू ख़ुद्दार कितना है.'

अजमेर के उस्ताद शाइर डॉ. अब्दुल मन्नान चिश्ती 'राही' का कहना है कि शाइरी में ख़याल कभी मजरूह नहीं होना चाहिए. कभी-कभार ख़याल को मजरूह होने से बचाने

के लिए अगर अरूज से समझौता कर लिया जाये तो कोई हर्ज़ नहीं, ख़याल का ज़िंदा रहना ज़रूरी है. सुकुमार जी ने ख़याल को भी ज़िंदा रक्खा और फ़न्नी हय्यत से भी समझौता नहीं किया. कवर पेज़ से लेकर काग़ज़ और शाइरी की क्वालिटी सब उम्दह हैं. मेरी दुआ है कृष्ण सुकुमार जी के लिए कि उनका कलाम और मक़्बूल हो और उनकी शाइरी आम आदमी तक पहुंचे.

आख़िर में यही कहूंगा, 'अल्लाह करे ज़ोरे-क़लम और ज़्यादह!'

के-८५१, अमीना मंज़िल,
गली नं. १४, कमला नेहरू नगर,
जोधपुर- ३४२००१.

सामाजिक विपर्यय पर रचनात्मक असहमति

प्रताप दीक्षित

पद-पुराण (व्यंग्य) **: राजेंद्र वर्मा**
प्रकाशक : अवध साहित्य प्रकाशन, २३ कृष्ण लोक कॉलोनी, मड़ियांव, लखनऊ-२२६०१०. **मूल्य :** ४९५/-

राजेंद्र वर्मा बहुविध रचनाकार हैं. काव्य की विभिन्न पद्धतियों - गीत, ग़ज़ल, हायकू, मुक्तछंद (लेकिन लयमुक्त नहीं) के अतिरिक्त कहानी, निबंध, मानवीय व्यवहार (ह्यूमन बिहैवियर) आलोचना के साथ व्यंग्य विधा में भी इन्हें महारत हासिल है. उनकी नयी कृति 'पद-पुराण' इसका प्रमाण है.

वर्तमान समय में मनुष्य विसंगतियों और विद्रूपताओं के बीच जीने के लिए विवश है. तथाकथित विकास की अवधारणा और सोच ने केवल परिवार, परिवेश को ही नहीं दुष्प्रभावित किया, बल्कि आदमी के सपने भी नष्ट होने की कगार पर हैं. साहित्य इसका प्रतिरोध करने के साथ सपनों को बचाने की कोशिश भी करता है. एक सार्थक रचना अपने समय की गतिविधियों से विरक्त नहीं होती. रचना की सार्थकता का मूल्यांकन उसकी सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक चेतना और अमानवीयता के प्रति उसकी प्रतिरोध-क्षमता के संदर्भ में किया जाता है. इन्हीं संदर्भों में व्यंग्य पाठक के अवचेतन में दबे आक्रोश और प्रतिरोध को सतह पर लाने का एक प्रयास होता है.

बालमुकुंद गुप्त की 'शिवशंभू के चिट्ठे' से लेकर हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवींद्रनाथ त्यागी, श्रीलाल शुक्ल और अद्यतन अनेक रचनाकारों ने व्यंग्य विधा के माध्यम से सामाजिक-राजनीतिक विसंगतियों के प्रतिरोध में शब्दों की लड़ाई ज़ारी रखी बल्कि आम आदमी की जिजीविषा और जीवंतता बनाये रखी है. व्यंग्य विधा की विशिष्टता है कि त्रासदियां इसके लिए केवल ख़बर नहीं बनतीं, बल्कि आदमी को इन्हें सहन करने, एक प्रकार से आग के दरिये से निकलने की शक्ति भी मिली है.

भले ही विद्वानों ने व्यंग्य के साथ हास्य पद जोड़ा हो मेरी इससे असहमति है. हंसा हमेशा दूसरों पर, पत्नी एवं उसके रिश्तेदारों पर, गंवई लोगों और उनकी भाषा पर जाता रहा है. हिंदी में इसकी लंबी परंपरा है. 'साली तो रस की प्याली है,' 'सलवार चली, सलवार चली' से लेकर चार लाइनों तक ऐसी अनेक हास्य रस की रचनाएं लिखी जाती रही हैं. अपने पर हंसना कठिन होता है जो व्यंग्यकार करता है. व्यंग्य तीक्ष्ण हो सकता है. मारक भी, परंतु फूहड़ नहीं होता. व्यंग्य के अवलंबन की निष्पत्ति करुणा, आक्रोश या शोक में हो सकती है. क्षुब्ध कर सकता है. इसके हास्य में रूदन छिपा रहता है. चार्ली चैप्लिन की फ़िल्में इसका उदाहरण हैं. इसमें एक प्रकार का सेंस ऑफ ह्यूमर होता है. संभव है पुलिस विभाग को आंदोलन करती भीड़ पर तेज़ पानी की फुहारों से नियंत्रित करने की प्रेरणा किसी व्यंग्यकार से ही मिली होगी.

'पद-पुराण' में लघुकथाएं मिला कर छोटी-बड़ी बयालिस व्यंग्य रचनाएं हैं. विविध विषयों पर ये रचनाएं चरित्रों, घटनाओं, कथा सूत्रों के बजाय परिवेश, प्रवृत्तियों, अंतर्विरोधों के चित्रण के द्वारा विसंगतियों का विरोध करती हैं. रचनाओं में छोटे-छोटे वाक्यों के अंदर से जादूगर की पिटारी की तरह निकलते नये-नये शब्द और उनमें छिपे निहितार्थ पाठकों को बांधे रहते हैं. मुहावरों और लोककथाओं का नये संदर्भों में प्रयोग और कटाक्ष लेखक की सामाजिक प्रतिबद्धता का द्योतक है. संग्रह का पहला व्यंग्य, 'पद-पुराण' पद शब्द की व्याख्या से शुरू होकर पैर छूने की परंपरा से होते हुए मध्यवर्गीय समाज में स्त्री की शालीनता के संबंध में रूढ़ियों

और अंतर्विरोधों पर तंज कसता है - 'मध्यवर्गीय समाज में वधू पढ़-लिख कर नौकरी करती है. अपना दहेज स्वयं इकट्ठा करती है. वह कोई कुलच्छिनी है क्या कि दहेज-लोभी वर के मुंह पर थूक दे या उसके मुंह पर चाय की प्याली फेंक दें?'

पंचतंत्र की कछुआ और खरगोश का प्रतीक वर्तमान शिक्षा व्यवस्था की विडंबना को दर्शाता है - 'पढ़-लिख जाने के बाद आदमी क़लम घिसने वाली नौकरी के अलावा किसी काम के लायक नहीं रहता.'

'घोड़ा, घास और आदमी' की जंगल गाथा आज के समय की राजनीतिक गोलबंदी को दर्शाती है - 'राजा तो वही होता है जो घोड़े और घास में सामंजस्य बनाये रख सके.' समय की विडंबना है या स्वार्थ की चरम सीमा कि चार सौ वर्षों में ही कबीर का 'सांच बराबर तप नहीं' उलट 'कर झूठ बराबर तप नहीं' बन गया है. लेखन में एक महत्वपूर्ण उक्ति है — 'इतिहास वैसे भी झूठ का पुलिंदा होता है. किसी न किसी का पक्ष लिये रहता है. पराजितों का इतिहास कौन लिखता है?'

'धन', 'ऋण' और ऋण ऋ ऋण + धन, बाज़ार और उपभोक्तावाद के बढ़ते वर्चस्व पर लिखी गयी शोकांतिकाएं हैं. 'अमीरी की बीमारी' धन की विडंबना पर एक अर्थ में आध्यात्मिक चिंतन है जहां लेखक कहता है — 'अमीरी, आदमी को आदमी कब रहने देती है?' इसी प्रकार 'लक्ष्मी से अनबन' दीपावली की रात लेखक का कथन ठीक ही है, पेट जब भरा हो, तो रुपयों में आग लगायी जा सकती है. हमारी सामाजिक संरचना पर नये सिरे से सोचने पर विवश करता है.

ठेंगा दिखाना एक प्रचलित मुहावरा है. 'ठेंगा' वर्तमान राजनीति के साथ इतिहास और पुराणों की विसंगतियों को प्रश्नांकित करता है. मनरेगा के संबंध में कटाक्ष — सरकार ने साल में सौ दिनों के काम की गारंटी दी है. दो सौ पैंसठ दिन भूखे नहीं रह सकते क्या? अथवा 'राजनीति तो ठेंगेबाजी का सुसंस्कृत रूप है. जनता और नेता के बीच ठेंगे का नाता भक्त और भगवान का है.' इसी प्रकार मुहावरे के माध्यम से राम, कृष्ण शंकर, विश्वामित्र आदि पर पौराणिक प्रसंगों के संदर्भ में सवाल उठाये गये हैं.

लेखक के व्यंग्य वाणों या शब्दों में मिसाइलों के लक्ष्य में साहित्य का उसका अपना क्षेत्र भी अछूता नहीं रह पाता. सीनियर सिटीज़न कवि के पं. रामप्रसाद मिश्र आज के साहित्य जगत में सर्वत्र मौज़ूद हैं. जिनकी पंक्तियों को कविता कहना कविता का अपमान करना होता. परंतु साहित्य की मंडी में उनका काव्य संग्रह दिल्ली के एक मशहूर प्रकाशन से आने वाला है. इसके लिए उन्हें केवल पचास हज़ार रुपए ख़र्च करने पड़े हैं. इस आलेख में एक जीवन का सत्य भी निहित है — आदमी मौत से डर कर हर काम करना चाहता है जो ज़िंदगी में नहीं कर पाता. 'हाय हिंदी' में भाषा की सामर्थ्य, पूर्वाग्रह, इच्छा शक्ति या व्यावहारिक और वस्तुनिष्ठ आकलन किया गया है.

मनोवैज्ञानिक सत्य है कि हमारा अहं दूसरों पर तरस खाकर तुष्ट होता है. किसी के उत्पीड़न के पीछे एक कारण यह भी होता है. नौकरशाही की इस प्रवृत्ति और आत्मसम्मान की संघर्ष कथा है — 'तरस खाने की कला. आम आदमी के शोषण का प्रतीकात्मक व्यंग्य है जोंकें और घुन. प्रतीक की एक बानगी है — 'देश के तालाब में आम आदमी की हालत गाय-भैंस जैसी ही है. जोंकें उससे चिपकी हुई हैं. कुछ खादी पहने, कुछ खाकी पहने.

मृत्यु एक अनिवार्य सत्य है. परंतु पीछे रह गये लोगों के स्वार्थ और आत्मकेंद्रीयता ने उन्हें किस कदर संवेदनहीन बना दिया है इसको विनोद में पगी चाशनी में पेश किया

<u>लघुकथा</u>

आर्तनाद

✍ सुरेश सौरभ

एक बुढ़िया का आर्तनाद – घर बंट गया, व्यापार बंट गया, मुंडेर बंट गयी. सब सामान गया, सब बांट डाला मेरे बेटे-बेटियों ने पर एक चीज़ न बांट पाये.

दोनों घुटनों के बीच सिर लटकाये बूढ़ा बोला – 'क्या नहीं बांट पाये भागवान.'

बुढ़िया – मेरा तुम्हारा दर्द!

✉ आचार्य श्री लक्ष्मण प्रसाद राज महाविद्यालय, निर्मल नगर, लखीमपुर.
मो. ७३७६२३६०६६.

गया है 'श्रद्धांजलि' में. 'आस्था' और 'आज का दिन' अंधविश्वासों, धार्मिक कूपमंडूकता, अवैज्ञानिक सोच के विरोध में लिखे गये हैं. यह सत्य है कि इनके मूल में आदमी का भय होता है परंतु इनके कारणों को जानने के लिए सतह के नीचे तक उतर खंगालने की कमी खटकती है. आस्था के पीछे तर्क अवश्य नहीं होते, परंतु संसार की सभी सभ्यताओं में किसी न किसी रूप में यह दिखाई देती है. 'बीरबल का दुख' में प्रचलित किवदंती के विपरीत शोधपरक जानकारी है. इतना ही नहीं संविधान की मूल पुस्तक में बने रेखाचित्रों और उसके प्रतीकों के अर्थ के संबंध में भी बहुत कम लोगों को मालूम है. सत्ता और सुविधा का गठजोड़ सदा से रहा है. लेखक चुटकी लेने से यहां भी नहीं चूका — यदि वह पढ़ा-लिखा विद्वान होता तो उसे ईर्ष्या करने से ही अवकाश न मिलता. अर्थात ईर्ष्या, द्वेष सब विद्वानों के शगल हैं.

कुछ रचनाओं के अंत में लेखकीय निष्कर्ष : 'झूठ बराबर तप नहीं - हाय रे ढोंग...', 'अमीरी की बीमारी - कैसी विडंबना है...', नवयुग का निर्माण — बाजार में उपभोक्तावाद...' आदि रचना की संप्रेषणीयता कम करती हैं. परंतु इसके पीछे लेखक की सदाशयता और बदलाव लाने की इच्छा ही प्रतीत होती है.

संकलन की रचनाएं राजनीति, समाज, धर्म, विषमता, प्रशासन, शिक्षा, साहित्य आदि सभी क्षेत्रों में विसंगतियों और मनुष्य विरोधी स्थितियों को चिन्हित और सजग करती हैं. सजग, सरल और सधी हुई भाषा से संग्रह अपनी पठनीयता स्वयं बनाता है.

एमडीएम २/३३, सेक्टर एच.
जानकीपुरम, लखनऊ-२२६०२१
मो. : ९९५६३९८६०३

With Best Compliments From

H. S. Dua

ICA Computers & Automation

Laptop/Computers/Printers Sales-Services
CC TV-Security Services

4, Neelkanth Shopping Arcade, Opp. Fine Arts Society Hall, 39, R.C.Marg,
Chembur, Mumbai-400071.
E-mail : icahsd@mtnl.net.in
Ph. : 25286311
Mob.: 9821038310 / 9892200272

संस्कृति संरक्षण संस्था

(Regn. No. E 23216 dt. 7-2-2006)

ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८. # फ़ोन : २५५१५५४१

संस्था की गतिविधियां व उद्देश्य

भारत की सामासिक संस्कृति, साहित्य, कला, भाषा तथा स्वस्थ परंपराओं को संरक्षित एवं संवर्धित करने के उद्देश्य से ***संस्कृति संरक्षण संस्था*** की स्थापना की गयी है.

संस्था की कुछ नियमित गतिविधियां इस प्रकार हैं:

१. संगीत की कक्षाएं नियमित चलाना.

२. संस्था के भाषा-विभाग द्वारा ***"कथाबिंब"*** त्रैमासिक कहानी पत्रिका का नियमित प्रकाशन. पिछले कई वर्षों से पत्रिका ने, वर्ष २००७ के प्रारंभ में दिवंगत हुए हिंदी साहित्यकार पद्मविभूषण **श्रीयुत कमलेश्वर** की स्मृति में अपने वार्षिक कहानी पुरस्कार का नाम ***"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार"*** रखा है. ये पुरस्कार पत्रिका में पूरे वर्ष में प्रकाशित कहानियों पर पाठकों के अभिमतों के आधार पर दिये जाते हैं. ***"कथाबिंब"*** किसी भी भाषा की एक मात्र पत्रिका है जो इस प्रकार का आयोजन करती है.

३. संगीत-नृत्य के कार्यक्रम आयोजित करना.

४. हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के कार्यक्रमों का आयोजन, जैसे : कवि-सम्मेलन व काव्य-सृजन प्रतियोगिताएं.

५. विद्यार्थियों के मन में संस्कृत भाषा के प्रति रुझान उत्पन्न करने हेतु प्रति वर्ष संस्कृत श्लोक वाचन-पठन प्रतियोगिता आयोजित करना.

६. हिंदी-पुस्तकालय प्रबंधन / संचालन.

७. जनसामान्य को सीधे प्रभावित करने वाले विषयों पर समय-समय पर संगोष्ठियों, परिचर्चाओं का आयोजन. सर्वप्रथम, १३ अक्तूबर २००७ को संस्था द्वारा आयोजित "**कंप्यूटर के विविध उपयोग और हिंदी**" विषय पर आयोजित संगोष्ठी को अप्रत्याशित सफलता प्राप्त हुई. इसी तरह "**भारतीय ऊर्जा समस्या : सुझाव व समाधान**" (१५ फरवरी २००९), "**चिकित्सा की वैकल्पिक पद्धतियां, निदान व उपचार**" (२७ फरवरी २०१०), "**शिक्षा का वर्तमान स्वरूप एवं परिवर्तन की दिशा**" (१२ मार्च २०११), "**राष्ट्र निर्माण और युवा शक्ति**" (३ फरवरी २०१३), "**वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भारतीय संस्कृति की सार्थकता**" (९ मार्च २०१४), "**विश्व के उत्थान में भारतीय मनीषियों का योगदान**" (०१ फरवरी २०१५), "**डिज़ीटल इंडिया पहल में हिंदी व अन्य भाषाओं की भूमिका**" (३१ जनवरी २०१६) विषयों पर भी संगोष्ठियां आयोजित की गयीं. कहना न होगा सभी को पर्याप्त सराहना मिली.

८. देश में उपलब्ध चिकित्सा के निदान व उपचार की अन्य पद्धतियों जैसे, आयुर्वेद एवं प्राकृतिक चिकित्सा व निदान आदि के विकास में सहयोगी बनना.

९. वैदिक ज्ञान को संरक्षित करने में सहयोगी होने का प्रयास.

१०. भारतीय भाषाओं में कंप्यूटर (संगणक) के प्रयोग को सत्वरता लाने के प्रयासों में सहयोगी बनना.

११. इन सभी प्रयासों के लिए हमारी संस्था को अलग-अलग भवनों की आवश्यकता है और ऐसे सेवाभावी सहयोगियों की आवश्यकता है जो हमें इतनी राशि प्रदान करें जिसे नियतकालिक निधि के रूप में जमा किया जा सके तथा अर्जित व्याज से हम अपनी गतिविधियों का संचालन कर सकें.

नोट : संस्था को आयकर अधिनियम की धारा ८०-जी के अंतर्गत प्रमाणपत्र प्राप्त है. इसके अंतर्गत सभी दानदाता रियायत के अधिकारी हैं.

"कमलेश्वर-स्मृति कथाबिंब कथा पुरस्कार-२०१६"

अभिमत-पत्र

वर्ष २०१६ के सभी अंकों में प्रकाशित कहानियों के शीर्षक, रचनाकारों के नाम के साथ नीचे दिये गये हैं. वर्ष २०१६ के चारों अंक **"कथाबिंब"** की वेबसाइट www.kathabimb.com पर उपलब्ध हैं. पाठक अपनी पसंद का क्रम (१,२,३,...७,८) सामने के खाने में लिखकर हमें भेजें. आप चाहें तो इस अभिमत-पत्र का प्रयोग करें अथवा मात्र आठ कहानियों का क्रम अलग से एक पोस्टकार्ड पर लिख कर भेज सकते हैं या ई-मेल द्वारा भेजें. प्राप्त अभिमतों के आधार पर पिछले वर्षों की तरह ही सर्वश्रेष्ठ कहानी (१५०० रु. - एक), श्रेष्ठ कहानी (१००० रु. - दो) तथा उत्तम कहानी (७५० रु. के पांच) पुरस्कार घोषित किये जायेंगे. जिन पाठकों की भेजी क्रमवार सूची अंतिम सूची से मेल खायेगी उन्हें कथाबिंब की त्रैवार्षिक सदस्यता (२०० रु.) प्रदान की जायेगी. कथाबिंब ही देश की एकमात्र पत्रिका है जिसने इस तरह का लोकतांत्रिक आयोजन प्रारंभ किया हुआ है. इसकी सफलता इसी में है कि ज़्यादा से ज़्यादा पाठक अपना निष्पक्ष मत व्यक्त करें. पाठकों का सहयोग ही हमारा मुख्य संबल है.

कहानी शीर्षक / रचनाकार	आपका क्रम
१. सिर्फ़ आधे घंटे के लिए - अंशु जौहरी	
२. मलबों के ढ़ेर से - लक्ष्मी रानी लाल	
३. निषिद्ध पथ के राही - पूनम "मनु"	
४. बिरवे - डॉ. सुभाष रंजन	
५. कोई लौटा दे मेरे बीते हुए दिन - मालती जोशी	
६. उड़ान - डॉ. अशोक भाटिया	
७. एक और चेहरा - कुसुम भट्ट	
८. ज़ीरो बटा सन्नाटा - नीता श्रीवास्तव	
९. हत्यारिन - डॉ. पूरन सिंह	
१०. अमल का स्टाइल है - सुषमा मुनींद्र	
११. सिलेटी बदलियां - वीणा विज "उदित"	
१२. धोबीपाट - सुशांत सुप्रिय	
१३. तुम्हारी अनुभूति - डॉ. निरुपमा राय	
१४. एक सुहानी शाम ... यूं ही बीती - मधु अरोड़ा	
१५. सलीब पर लटका आदमी - गोविंद उपाध्याय	
१६. वृंदा ने कहा था... - कमल कपूर	
१७. विकल्प - राजेंद्र वर्मा	
१८. क़बरखुद्दा - डॉ. मोहसिन ख़ान	
१९. कसाईखाना - कल्पना रामानी	
२०. नदी, सीप और घोंघे - जयराम सिंह गौर	

केरल यात्रा की
कुछ झलकियां...

आर. एन. आई. पंजीकरण संख्या :३५७६४/ ७९

संपर्क : ए-१०, बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई-४०० ०८८.

मंजुश्री द्वारा संपादित व युनिटी प्रिंटिंग प्रेस, ९, रेतीवाला इंडस्ट्रीयल इस्टेट, भायखला, मुंबई - ४०० ०२७. में मुद्रित.
टाईप सेटर्स : वन अप प्रिंटर्स, १२ वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई - ४०० ०७१. फोन : २५५१५५४१